अनन्यभक्ति कैसे प्राप्त हो?

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय पृष्ठ-संख्या

□□

पापी एवं मूर्ख भी शीघ्र भगवत्प्राप्ति कर सकते हैं

संसारमें सभी लोग सुख चाहते हैं, लेकिन वास्तविक सुखके लिये कोई भी प्रयत्न नहीं करता। जितनी चेष्टा रुपये कमानेके लिये करते हैं, उतनी यदि भगवान्‌की प्राप्तिके लिये करें तो भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है। लेकिन बड़े दुःखकी बात है, वास्तवमें श्रद्धाकी कमी होनेसे ही भगवत्साक्षात्कारमें इतना विलम्ब हो रहा है। बहुतसे भाइयोंका तो भगवान्‌के अस्तित्वमें विश्वास ही नहीं है, बहुतोंको भगवान्‌के अस्तित्वमें विश्वास है तो यह समझते हैं कि भगवान् शायद मिलते हैं या नहीं। इसी प्रकार बहुतसे भाई इस प्रकार समझते हैं कि भगवान् मिलते तो हैं लेकिन हमें मिलेंगे या नहीं। हम सभीको यह मानना चाहिये कि भगवान् हैं, वे अपने भक्तोंको मिले हैं और वर्तमानमें भी मिलते हैं तथा हमको भी मिल सकते हैं। भगवान्‌के यहाँ किसी प्रकारका भेदभाव नहीं है। हमलोग श्रद्धाकी कमी होनेके कारण उनकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न नहीं करते। परमात्माके मिलनेपर ही वास्तविक सुखकी प्राप्ति होती है। सांसारिक विषयभोगोंका सुख तो दुःखमिश्रित, विनाशशील एवं क्षणभंगुर है। परमात्माकी प्राप्तिसे होनेवाला सुख वास्तविक एवं महान् है। भगवान्‌के मिलनेको कठिन नहीं समझना चाहिये, भगवान्‌के दर्शन बहुत ही सरलतासे हो सकते हैं, फिर कलियुगमें तो और भी सरलतासे भगवत्साक्षात्कार हो सकता है। श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

प्रवचन—दिनांक २१-३-१९५०, सायंकाल ५ बजे।

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

कलियुगके समान दूसरा कोई युग नहीं है यदि विश्वास हो तो केवल श्रीरामचन्द्रजीके गुणगान करके मनुष्य बहुत सरलतासे संसारसागरसे तर सकता है। यदि हम अतिशय पापी हैं तो भी भगवान् हमको मिल सकते हैं, क्योंकि भगवान् पतितपावन हैं। वे हमारे दोषोंकी ओर कभी दृष्टि नहीं डालते, वे तो केवल प्रेम देखते हैं।

रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥

भगवान्‌में श्रद्धा-प्रेम होनेपर भगवान् बहुत शीघ्र मिल सकते हैं, भगवान्‌के दर्शन हो गये तो सब काम हो गये। जो भगवान्‌का मिलना कठिन समझता है, उसके लिये विश्वासकी कमी होनेके कारण कठिनता है। अतिशय पापीसे पापी एवं मूर्खसे भी मूर्ख हो, यदि उसकी आज ही मृत्यु होनेवाली हो तो आज ही उसको भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है। भगवान् गीतामें कहते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(गीता ९। ३०-३१)

अतिशय दुराचारी भी यदि मुझे अनन्यभावसे भजता है तो उसका बहुत शीघ्र कल्याण हो जाता है, वह बहुत शीघ्र धर्मात्मा बन जाता है। चाहे कैसा भी पापी मांस, मदिरा भक्षण करनेवाला भी क्यों न हो—वह सनातन शान्तिको प्राप्त हो जाता है। जो मूर्ख है एवं प्रेमपूर्वक भगवान्‌का भजन करता है, उसको भगवान्

सद्बुद्धि देते हैं, जिससे उसका भी कल्याण हो जाता है। गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०। १०)

हे अर्जुन! उन निरन्तर मुझमें लगे रहनेवाले प्रेमपूर्वक मेरा भजन करनेवाले भक्तोंको मैं वह बुद्धियोग प्रदान करता हूँ जिससे वे मुझे प्राप्त हो जाते हैं। फिर पूछा जा सकता है जो महान् मूर्ख है, योग-ज्ञान-भक्ति-तप-स्वाध्याय कुछ भी नहीं जानता, क्या उसका भी कल्याण हो सकता है? भगवान्‌ने उनके कल्याणका भी उपाय बतलाया है—

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥

(गीता १३। २५)

इस प्रकारके महामूर्ख भी अन्य साधु, सन्तों एवं जानकारोंसे भगवान्‌की कथास्वरूपादि सुन, जान, समझकर यदि मेरी उपासना करते हैं तो वे सुननेके परायण हुए भक्त भी मृत्युका उल्लंघन कर जाते हैं। इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि अतिशय पापी एवं अतिशय मूर्खका भी बहुत ही शीघ्र उद्धार हो सकता है।

जिसकी मृत्यु आज ही होनेवाली है उसका भी उद्धार हो सकता है, यदि मरते समय वह भगवान्‌के नामको जपता हुआ शरीरका त्याग करता है। गीतामें कहा है—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

(गीता ८। ५)

जो अन्तकालमें मरते समय मेरा स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है वह भी परमगतिको प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार भगवान्‌से मिलनेका सुगमसे सुगम मार्ग मिल गया। कैसा भी पापी, नीच एवं मूर्ख क्यों न हो—भगवान् उसके अवगुणोंकी ओर नहीं देखते, उसका तुरन्त कल्याण कर देते हैं। भरतजी कहते हैं—

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥
मोरें जियँ भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई॥

प्रभु श्रीरामचन्द्रजी अपने भक्तोंके अवगुण नहीं देखते, वे अत्यन्त सरल स्वभाववाले हैं, उनका नाम दीनबन्धु है। मेरे मनमें इस प्रकारका दृढ़ विश्वास हो रहा है कि भगवान् श्रीराम मुझे दर्शन देंगे कारण सगुन इस प्रकारके हो रहे हैं। उस समय भरतजीकी दाहिनी भुजा एवं आँख फड़क रही थी। इसीलिये चाहे कोई कैसा भी पापी क्यों न हो, भगवान् अवश्य मिल जाते हैं। इसी बातको लक्ष्य करके, भगवान्‌पर विश्वास करके उनके शरणागत हो जाना चाहिये, उनके शरणागत हो जानेपर पापका सर्वनाश हो जाता है, सनातन ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है। इस प्रकार शास्त्रोंमें जगह-जगह प्रमाण मिलते हैं। भगवान् हम लोगोंको बारम्बार हिम्मत बँधाते हैं कि चिन्ता मत करो, विषयभोगोंसे प्रेम हटाकर मुझमें मनको लगाओ। बड़ा सीधा मार्ग है।

तीर्थोंमें किसलिये आना हुआ है? तपस्या ईश्वरभक्ति-सद्‌गुणोंके संग्रहके लिये एवं उत्तम आचरण करनेके लिये। इस प्रकारके साधनोंसे आत्माकी शुद्धि होकर भगवत्साक्षात्कार हो जानेपर परम शान्ति, आनन्दकी प्राप्ति होती है, वह आनन्द

सदैव स्थिर रहता है। इसलिये तीर्थोंमें व्यर्थ कामोंमें बिलकुल समय नहीं लगाना चाहिये। तीर्थोंमें पाप एवं पुण्य जो भी किये जाते हैं वे महान् बन जाते हैं, जिस प्रकार महापुरुषोंकी सेवा करनेसे महान् फलकी प्राप्ति होती है उसी प्रकार महापुरुषोंका तिरस्कार करनेपर महान् पाप लगता है। जिस प्रकार गंगास्नान करनेसे महान् फलकी प्राप्ति होती है, उसी प्रकार गंगाजीका तिरस्कार करनेसे महान् पाप लगता है। इसलिये गंगाजीका जल मल-मूत्र विसर्जनके कार्यमें नहीं लाना चाहिये, गंगाजीमें मुँह धोना, दतुअन-कुल्ला नहीं करना चाहिये। गंगाजीमें मल-मूत्रके अपवित्र हाथ नहीं धोने चाहिये, गंगाजीके किनारे मल-मूत्र विसर्जन नहीं करना चाहिये—इस प्रकार गंगाजीका अपराध नहीं करना चाहिये। गंगास्नान करते समय यदि पुष्प हो तो पहले गंगाजीपर पुष्प चढ़ाने चाहिये, अन्यथा गंगाजीको नमस्कार करके उनका जल सिरपर धारण करके तथा आचमन करनेके बाद ही गंगाजीमें स्नान करना चाहिये। यदि हम गंगाजीका आदर करेंगे तो गंगाजी हमारा आदर यानी उद्धार कर देंगी। इसी प्रकार जब मन्दिरोंमें देवताओंके दर्शन करने जायँ, उस समय उनपर पत्र, पुष्प, फल, जल चढ़ाना चाहिये, इससे देवता प्रसन्न होते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें अर्जुनसे कहते हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(गीता ९। २६)

पत्र, पुष्प, फल, जल जो कुछ मेरे लिये श्रद्धाभक्तिपूर्वक दिया जाता है, श्रद्धासे दिये गये इस प्रकारके भक्तका प्रसाद मैं ग्रहण करता हूँ—खाता हूँ। कोई पूछे कि भगवान् फल, जल

आदि ग्रहण करते हुए प्रत्यक्षमें दिखलायी तो नहीं पड़ते? यह श्रद्धा एवं भक्तिकी कमी है, फिर भी उनके लिये जो भी कुछ अर्पण किया जाता है, भगवान् उसको स्वीकार तो कर ही लेते हैं, इसलिये भगवान्‌के निमित्त जो भी कुछ दिया ज़ाय वह श्रद्धासे ही देना चाहिये। भगवान् रुपयों-पैसोंसे प्रसन्न नहीं होते, वे तो भक्ति एवं श्रद्धाभावसे प्रसन्न होते हैं। द्रौपदीने सागका एक पत्ता भगवान्‌के लिये प्रेमपूर्वक दिया उसीसे भगवान् प्रसन्न हो गये। इसी प्रकार गजेन्द्रने केवल एक पुष्प चढ़ाकर भगवान्‌को प्रसन्न कर लिया। अपने गीताभवनमें पुष्पोंका अभाव है। अत: एक ही पुष्प भगवान्‌के चढ़ाना पर्याप्त है, बहुतोंकी आवश्यकता नहीं है, आवश्यकता है श्रद्धा एवं प्रेमकी। इसी प्रकार भीलनीने बेर खिलाकर भगवान्‌को प्रसन्न कर लिया था एवं राजा रन्तिदेवने तो केवल पानी पिलाकर ही भगवान्‌को प्रसन्न कर लिया था।

इस बातको समझकर पत्र, पुष्प भगवान्‌के चढ़ा देना चाहिये, इससे भगवान् बहुत प्रसन्न होते हैं। इसी प्रकार विरक्त साधु-महात्माओंका संग करना चाहिये। विरक्त साधु बहुत कम हैं, लेकिन बिलकुल अभाव भी नहीं है। खोजनेपर इस प्रकारके विरक्त साधु महापुरुष मिल भी सकते हैं, उनका संग करना चाहिये एवं उनसे अपनी आत्माके कल्याणके लिये प्रश्न पूछने चाहिये। वे साधु महापुरुष जो साधन बतलायें, उसके अनुसार आचरण करना चाहिये, इससे कल्याण हो सकता है। यदि कुछ बन सके तो महापुरुषों, साधुओंकी अन्न एवं वस्त्रसे भी सहायता करनी चाहिये। साधुओंको पैसा नकद नहीं देना चाहिये, क्योंकि साधुओंको नकद पैसा देनेवाला पापका भागी होता है। साधुओंको पैसा पासमें रखनेका विधान नहीं है, अत: उनको पैसा देनेसे

देनेवालेको भी पाप लगता है, अतः साधुओंको उनके काममें आनेवाली वस्तु ही देनी चाहिये, पैसा-रुपया कभी नहीं देना चाहिये। हमलोग भी साधुओंको जूता, वस्त्र, अच्छी पुस्तकें, कम्बल आदि ये ही सब चीजें दिया करते हैं। हमारी यही चेष्टा रहती है कि साधुओंको पैसा नहीं दिया जाय, यदि विशेष मौका लगे तो साधुओंको तीर्थ करा देना चाहिये। कंचन एवं कामिनीको स्वीकार करनेसे साधु महापुरुष दोषके भागी बनते हैं। अतः हमें इसके लिये निमित्त नहीं बनना चाहिये। माताओं, बहिनोंको चाहिये कि साधुओंके चरण-स्पर्श न करें, दूरसे ही प्रणाम किया जा सकता है, परपुरुषको छूनेसे स्त्रियाँ पापकी भागी होती हैं। उनके पातिव्रतधर्मका बहुत सुन्दर उदाहरण वाल्मीकि रामायणमें आता है। श्रीहनुमान्‌जी श्रीरामचन्द्रजीका सन्देश लेकर सीताजीके पास जाते हैं। रावण अशोकवाटिकामें सीताजीके पास आता है एवं सीताजीको डरा-धमकाकर वापस चला जाता है। रावणके चले जानेपर सीताजीके पास हनुमान्‌जी पेड़से उतरकर आते हैं। सीताजी हनुमान्‌जीसे कहती हैं—मुझे बड़ा दुःख हो रहा है, श्रीरामके वियोगमें मैं प्राणोंका त्याग कर दूँगी, श्रीरामसे जाकर कह दो, यदि वे एक महीनेके भीतर यहाँ नहीं पहुँचेंगे तो मैं आत्महत्या कर लूँगी। तब सीताजीके वचनोंको सुनकर श्रीहनुमान्‌जीने उत्तर दिया—जननी! तुम चिंता मत करो, मैं अभी तुमको अपनी पीठपर चढ़ाकर श्रीरामके पास पहुँचा दूँ। तब सीताजीने उत्तर दिया—मैं जानती हूँ, तुम श्रीरामके परम भक्त हो एवं मेरे लिये पुत्रके समान हो, लेकिन मैं परपुरुषके शरीरका स्पर्श नहीं कर सकती, इससे पातिव्रतधर्ममें कलंक आता है। यह दुष्ट रावण मुझे बलात् उठा लाया, मैंने

अपनी इच्छासे इसका स्पर्श नहीं किया। इतना भारी संकट उपस्थित होनेपर भी सीताजीने हनुमान्‌जी-जैसे उच्चकोटिके साधु ब्रह्मचारीके शरीरको भी स्पर्श करना पाप एवं पातिव्रत धर्ममें कलंक समझा। यदि श्रीराम नहीं आयेंगे तो वे अपने प्राणोंका त्याग कर सकती हैं, लेकिन धर्मका त्याग नहीं कर सकतीं। इसीलिये माताओं एवं भाइयोंको खूब ध्यान रखना चाहिये। महाभारतके वनपर्वमें इस प्रकार कथा आती है—अर्जुन अस्त्रविद्या सीखनेके लिये इन्द्रके पास गये। इन्द्रके भवनमें उर्वशी नामकी एक अप्सरा थी। इन्द्रके राजमहलमें उर्वशीका नृत्य हो रहा था, उस समय अर्जुन भी वहीं थे, उन्होंने उर्वशीको अपने पूर्वज पुरुराजकी पत्नी समझकर मातृभावसे उसकी ओर दृष्टिपात किया। इन्द्रलोकमें जो अप्सराएँ रहती हैं वे नाच-गान भी करती हैं एवं वहाँ रहनेवालोंसे संयोग भी करती हैं। जब अर्जुन उर्वशीकी ओर मातृभावसे देख रहे थे, तब इन्द्रने सोचा कि अर्जुन उर्वशीसे संयोग करना चाहता है, इसलिये इन्द्रने उर्वशीको आज्ञा दी कि तुम जाकर अर्जुनको प्रसन्न करके आओ। उर्वशी रात्रिके समय अर्जुनके पास आयी। अर्जुनके पूछनेपर आनेका उद्देश्य बतलाया। अर्जुनने कहा—मैं तो आपको अपनी माता कुन्ती, माद्री एवं इन्द्राणीके समान पूज्य एवं अपनी माँ समझता हूँ, मैं आपसे इस प्रकारका जघन्य कृत्य किस प्रकार कर सकता हूँ? तब उर्वशीने संयोगके लिये अर्जुनको हर प्रकारसे तैयार करनेकी चेष्टा की, लेकिन अर्जुन तैयार नहीं हुए। अपितु उर्वशीने कुपित होकर अर्जुनको शाप दिया तुम एक वर्षके लिये नपुंसक हो जाओगे। अर्जुनने यह शाप भी स्वीकार कर लिया, लेकिन अपने धर्मका त्याग नहीं किया। इसी प्रकार कचका भी

उदाहरण आता है। देवयानीने बृहस्पतिके पुत्र कचको विवाहके लिये हर प्रकारसे समझाया, लेकिन कच देवयानीको बहनके समान समझता था, वह किस प्रकार स्वीकार करे। आखिर देवयानीने कचको शाप दिया—जाओ! तुमने मेरे पितासे जो संजीवनी विद्या सीखी है, वह भूल जाओगे। कचने शाप स्वीकार किया लेकिन अपने धर्मका त्याग नहीं किया। चाहे जो कुछ भी हो जाय अपने धर्मपर दृढ़ रहना चाहिये। पुरुषोंको चाहिये कि परस्त्रीकी ओर न देखें और उसका स्पर्श तो करें ही नहीं। यदि बात करनेका मौका भी पड़े तो नीची दृष्टि करके स्त्रियोंसे बातचीत की जा सकती है। इसी प्रकार स्त्रियोंको परपुरुषको पिता-तुल्य समझकर उनसे बातचीत करनी चाहिये। तीर्थोंमें रहकर ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। अपनी स्त्रीसे भी समागम न करे तो बहुत उत्तम बात है, फिर भी महीनेमें एक बार समागम किया जा सकता है इससे अधिक नहीं। लेकिन परस्त्रीसे समागम करनेकी इच्छा करना बहुत बड़ा पाप है। कभी परस्त्रीसे बात करनेकी विशेष आवश्यकता पड़ जाय तो मातृभावसे बात कर सकते हैं। तीर्थोंमें सत्य बोलनेका नियम लेना चाहिये।

तीर्थोंमें आकर दूसरोंका अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिये। हरेक चीज अपने पैसोंसे लेनी चाहिये। लेकिन साधु एवं ब्राह्मणोंके लिये इस चीजकी छूट है, क्योंकि ब्राह्मणोंके लिये शास्त्रोंमें दान लेने एवं साधुओंके लिये भिक्षा माँगनेका विधान है।

तीर्थोंमें आकर जप एवं तपस्या करनी चाहिये। जप करनेका बड़ा भारी महत्त्व है, यहाँ आकर खूब तपस्या करनी चाहिये। धर्मपालन करनेके लिये खूब कष्ट सहन करना चाहिये, संयमसे रहना चाहिये। आठ पहरमें एक बार भोजन कर सके तो उत्तम

बात है, अन्यथा दो बार भी कर सकते हैं। मोटे कपड़े पहनने चाहिये, इस प्रकार वैराग्यभावसे रहनेपर भजन करनेमें सहायता मिलती है। तीर्थोंमें आकर मौनव्रत धारण करना चाहिये।

तीर्थोंमें आकर पितरोंकी तृप्तिके लिये श्राद्ध करना चाहिये एवं उनके निमित्त ब्राह्मण-भोजन तथा तर्पण करना चाहिये और देवताओंके लिये हवन करना चाहिये। इनका बहुत भारी माहात्म्य है।

तीर्थोंमें आकर अपना समय प्रमाद, आलस्य, भोग एवं निद्रादि दुर्गुणोंमें नहीं बिताना चाहिये। इन अवगुणोंको विषके समान समझकर इनका त्याग करना चाहिये एवं सद्‌गुणोंको अमृतके समान समझकर उनका आचरण करना चाहिये।

तीर्थोंमें चोरी नहीं करनी चाहिये। दूसरेकी वस्तु देनेपर भी ग्रहण नहीं करनी चाहिये। जो भी चीज लेनी हो पैसा देकर लेनी चाहिये।

तीर्थोंमें संयमसे रहना चाहिये। खान-पान एवं पहननेमें अधिक खर्च नहीं करना चाहिये, मोटा खाना-पीना, पहनना चाहिये। परोपकारमें चाहे जो भी कुछ खर्च किया जा सकता है, अपने शारीरिक खर्चके लिये कंजूसकी तरह कमसे कम खर्च करना चाहिये।

तीर्थोंमें आकर वनमें एकान्तमें जाकर भगवान्‌के नामका जप, भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान, सत्शास्त्रोंका स्वाध्याय, सत्पुरुषोंका संग एवं मन-इन्द्रियोंका संयम रखना सबसे बड़ी चीज है।

तीर्थोंमें गंगाजीकी पूजा, गीताजीका स्वाध्याय, मानसिक पूजा तथा व्रत एवं उपवास करने चाहिये। व्रत उपवास भी तपस्या है—इनसे अन्त:करण पवित्र होकर भगवान्‌की प्राप्ति होती है।

तीर्थोंमें आकर सभी शुभकर्म निष्कामभावसे करने चाहिये, भगवान् निष्कामभावसे किये गये साधनकी प्रशंसा करते हैं—**'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्'**—निष्कामभावसे किया गया थोड़ा-सा भी साधन जन्म-मरणसे रक्षा करता है।

तीर्थोंमें रहकर किंचित्मात्र भी पापका आचरण नहीं करना चाहिये, पवित्रतासे रहना चाहिये, भोजन एवं व्यवहार शुद्ध रखने चाहिये। भगवान्का भजन एवं ध्यान करके पापोंको नष्ट करना चाहिये एवं खाते-पीते हर समय भगवान्को याद रखना चाहिये। जो सिद्धि सैकड़ों वर्षोंके साधनसे भी नहीं मिलती है, वह तीर्थोंमें रहकर केवल एक महीनेतक भी शास्त्रोंकी आज्ञानुसार निष्कामभावसे आचरण करें तो मिल सकती है—कल्याण हो सकता है। कामना, दंभ, पाखण्ड, ऐश, आराम, मान-बड़ाई, प्रतिष्ठाका त्याग करना चाहिये तथा विवेक एवं वैराग्यपूर्वक निष्कामभावसे साधना करनी चाहिये। इससे शीघ्र ही भगवत्साक्षात्कार हो सकता है।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

□□

३ अपने साथ जानेवाली चीजोंमें सद्भाव भरें

भगवान्‌ने हमें जो विवेक एवं बुद्धि दिये हैं, उन्हें काममें लाना चाहिये। चौरासी लाख योनियोंमें जितने भी प्राणी हैं उनमेंसे सबसे बढ़कर मनुष्य-योनि है। मनुष्यको प्राप्त अधिकार एवं उसकी बुद्धि अलौकिक है। मनुष्यकी बुद्धिके सामने देवतालोग भी चकराते हैं, यह समझकर हमें अपनी बुद्धिको काममें लेना चाहिये। लेकिन जब मनुष्य पशु बन जाता है तब उसकी बुद्धि एवं वाणीपर परदा पड़ जाता है। आत्मोद्धारके लिये प्राणी मनुष्य-शरीरमें ही चेष्टा कर सकता है, अन्य किसी भी योनिमें आत्माका कल्याण नहीं किया जा सकता। एक मनुष्य दो प्रकारकी दूकानें करता है, एक दूकानपर उसका पूरा अधिकार है और दूसरी दूकानमें उसका पचीस प्रतिशत साझा है। मनुष्य उस पचीस प्रतिशत साझेवाली दूकानमें भी अपना ध्यान एवं साधारण बुद्धि लगाता है, लेकिन जिस दूकानमें अपना पूरा अधिकार है वहाँ विशेष बुद्धि एवं विशेष ध्यान लगाता है तथा पचीस प्रतिशत साझेवाली दूकानकी अपेक्षा पूरे अधिकार वाली दूकानपर अधिक समय, परिश्रम एवं सतर्कता रखता है, क्योंकि पचीस प्रतिशत साझेवाला काम तो गौण है एवं पूरे अधिकारवाला अपना खास निजी काम है।

प्रश्न—अपनी पूरी दूकान कौन-सी है?

उत्तर—आत्मोद्धार-कल्याण-भगवत्प्राप्तिका कार्य यह अपनी पूरे अधिकारवाली दूकान है। यह निजी काम पूरे अधिकार-वाला अपने ही पास एवं अपने ही जिम्मे है, पूर्ण रूपसे इस

प्रवचन—दिनांक २२ मार्च १९५०, प्रातःकाल १०.३० बजे।

कामकी उन्नति या हानि करना अपने ही वशकी बात है, दूसरा कोई नहीं कर सकता। यह सांसारिक कार्य जो रुपया पैदा करनेका है, उस दूकानमें स्त्री-पुत्रादि बहुतोंका हिस्सा है, बहुत हिस्सेवाले काममें जोखिम रहती है, क्योंकि मरनेके बाद इस दूकानसे अपना एक पैसेका भी सम्बन्ध नहीं रह सकता। मरनेके सिवाय जीते-जी भी इस दूकानका रुपया अपने परमार्थमें नहीं लगा सकते; क्योंकि पहले तो अपना मन अटकता है। रुपयोंको परमार्थमें लगानेमें यदि अपना मन नहीं भी अटके तो घरवाले नहीं लगाने देते, यदि आप जबर्दस्ती धनको परमार्थमें लगाना चाहते हैं तो घरवाले कहते हैं माथा खराब हो गया, हमारे जिन्दा रहते तुमको रुपये नष्ट करनेका कोई भी अधिकार नहीं है। जबतक आप अपने कमाये धनकी रक्षा करते हैं तबतक तो घरवाले सभी अपने हैं, यदि उस धनको परमार्थमें लगाना चाहें तो घरवाले सभी शत्रु हैं। लेकिन जो अपनी वास्तविक दूकान है, उसकी पूँजी मरनेके बाद भी साथ रहती है। इसलिये जो पूँजी मरनेके बाद भी अपना साथ देती है, उसका ही संग्रह करना चाहिये। साझेवाली दूकानकी पूँजी तो आप जीवितकालमें भी काममें नहीं ला सकते, मरनेके बाद तो प्रश्न ही क्या है?

अब आपको विज्ञानकी बात बताते हैं। जिस प्रकार हम इस बड़े कमरे (हॉल) में बैठे हैं—इसमें प्रकाश, धूप, वायु आदि आने-जानेके लिये खिड़की, दरवाजे आदि सभी कुछ हैं। इसी प्रकार इस शरीरमें रहनेवाला जो जीवात्मा है उसके नौ द्वार हैं; इस शरीररूपी मकानमेंसे जब यह जीवात्मा निकलकर बाहर जाता है, तब सांसारिक सुखके सभी साधन स्त्री, पुत्र, मकानादि कोई भी साथ नहीं देते, सब यहीं पड़े रह जाते हैं, बल्कि जीवात्माका शरीररूपी यह मकान भी

यहीं पड़ा रह जाता है। जीवात्माके साथ मन, बुद्धि, प्राण एवं इन्द्रियाँ जाती हैं। जब यह शरीर इन चीजोंसे शून्य हो जाता है तब लोग कहते हैं कि प्राण निकल गये। प्राणके साथ-साथ मन, बुद्धि एवं इन्द्रियाँ भी शरीरमें नहीं रहते एवं शरीर इनके अभावमें निश्चेष्ट होकर मुर्देकी संज्ञावाला हो जाता है। निद्रावस्थामें तो यह आशा रहती है कि मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ अभी सुप्त हैं, वे वापस चेतनावस्थामें आयेंगी, लेकिन मर जानेपर तो यह आशा नहीं रहती, बस, समाप्ति हो जाती है। वह जीवात्मा मन, इन्द्रियाँ एवं बुद्धि सबको लेकर सदाके लिये इस नश्वर शरीरको छोड़कर विदा हो जाता है। इसलिये अब यह समझना चाहिये कि जीवात्माके साथमें जानेवाले मन, बुद्धि एवं इन्द्रियोंमें जो भी चीज भरी जायगी, वही अपने जीवात्माके काम आयेगी, क्योंकि जीवात्माका ये तीनों साथ देनेवाले हैं, इसके विपरीत इस शरीरको जो खिलाओ-पिलाओगे वह तो खाक हो जायगा, क्योंकि शरीरका तो नाश हो जाता है; अतः इस शरीरके भीतरमें जो सूक्ष्म चीजें हैं जीवात्मा, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ आदि—जो अपना साथ देनेवाली हैं—उनमें माल भरना बुद्धिमानीका काम है, न कि शरीरमें। इनमें माल किस प्रकारका भरना चाहिये—यह क्रमशः समझाया जाता है—

प्राणोंमें माल भरना—प्राणोंसे प्राणायामका अभ्यास करना चाहिये एवं श्वाससे नामजप करना चाहिये। प्राण एवं अपानसे नामजप करना चाहिये। प्राण, अपान, व्यान आदि जो पाँच प्रकारके प्राणवायु बतलाये गये हैं—इनका अभ्यास करना चाहिये, जो मरनेके बाद भी अपना साथ देते हैं। प्राणायामकी सहायतासे यदि प्राणोंकी सिद्धि कर ली जाय तो मनुष्य जो चाहे वह कर सकता है, वह मृत्युको भी वशमें कर सकता है। प्राणोंकी

सिद्धिसे ऋद्धि, सिद्धिकी प्राप्ति एवं ईश्वरकी प्राप्ति हो सकती है। अतः प्राणोंसे वही काम लेना चाहिये जो मरनेके बाद भी अपने काममें आये। प्राणायामके अभ्याससे किसी भी प्रकारकी बीमारी पासमें नहीं आ सकती।

बुद्धिमें माल भरना—बुद्धिमें परमात्माके तत्त्व एवं रहस्यका ज्ञान, ब्रह्मविद्याका ज्ञान भरना चाहिये। बुद्धिको विषय-भोगोंके भोग्य पदार्थोंकी समझमें लगाना मूर्खता है। अतः भगवान्‌के तत्त्व एवं ज्ञानको समझनेमें बुद्धिको लगाना चाहिये। समझ लो एक व्यापारमें बुद्धि लगाकर आपने लाखों रुपये कमाये और उसके बाद आपकी मृत्यु हो गयी। सारे रुपये यहीं रह गये, शरीर भी छूट गया, अपना असली साथ जानेवाला काम बाकी रह गया। बुद्धिका दुरुपयोग किया—अब बैठकर रोओ। संग्रह करके मनुष्यको रोना पड़े, पछतावा हो—इस प्रकारके कामोंमें बुद्धिको लगाकर उसका दुरुपयोग नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार आपने बुद्धि लगाकर, अपने लड़केको पढ़ा-लिखाकर योग्य बनाया, संयोगसे आपका लड़का मर गया, अब बैठकर रोओ। लेकिन आप बुद्धिको यदि परमार्थमें लगाते तो आपको इस प्रकार रोना नहीं पड़ता। इसलिये जो चीज नाश होनेवाली है उनमें अधिक बुद्धि नहीं लगानी चाहिये। जो वस्तु सदा साथ देवे उसमें बुद्धि लगानी चाहिये। जबतक शरीरमें जीवात्मा है, तबतक बुद्धि भी है, अतः जबतक इस शरीरमें बुद्धिका वास है उससे सच्चा ज्ञान बढ़ाना चाहिये, जो वास्तवमें कायम रहे। मिथ्या ज्ञान बढ़ाकर अपना पतन नहीं करना चाहिये। जिस प्रकार आपने इंजीनियर बनकर अपनी बुद्धिको मकानादिके नक्शे, इंजन, कल-कारखाने आदि बनानेमें लगाया, लेकिन जब बुद्धि इस शरीरको छोड़कर चली

जायगी, तब ये मकान, कल-कारखाने आपके यहीं पड़े रह जायँगे। मरकर जब जायँगे तब आपको दूसरी इंजीनियरी सीखनी पड़ेगी। इसलिये परमात्माके रहस्य, ज्ञान एवं तत्त्वको समझकर अपनी बुद्धिको साधनमें लगाना चाहिये। साधनमें संयोगवश कुछ कमी भी रह गयी और आपको शरीर छोड़ना पड़े, तब भी मरनेके बाद दूसरे जन्ममें पहले जन्मके अभ्यासके कारण वैसा ही संयोग प्राप्त होगा, जिसके आधारपर आप साधन करके फिरसे अपना कल्याण कर सकेंगे। भगवान्‌ने इस बातको गीताजीमें स्पष्ट बतलाया है—

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन॥

(गीता ६। ४३)

पहले जन्मकी साधनाके अनुसार साधक फिर बुद्धिसंयोगको प्राप्त हो जाता है एवं अपने साधनकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करता है। इसलिये बुद्धिमें श्रद्धा, ज्ञान, निश्चय, सुन्दरभाव, निष्कामभाव, भक्तिभाव भरने चाहिये, सांसारिक सुखोंका ज्ञान तो संसारतक ही सीमित एवं संसारमें रहनेवाला तथा अनिष्ट करनेवाला है। संसारमें अपना जिन-जिनसे सम्बन्ध है, न तो वे ही इस संसारमें कायम रहेंगे और न आप ही इस संसारमें रहेंगे। मालूम नहीं ये आपके पुत्र, स्त्री, बन्धु-बान्धवादि जो संयोग एवं वियोगको लेकर पैदा हुए हैं कहाँ जायँगे और आप कहाँ जायँगे। जिससे आपका एक दिन वियोग होना निश्चित है उनसे आपको संयोग नहीं रखना चाहिये। जिस चीजसे आपका कभी वियोग न हो सके, उस चीजके साथ संयोग करना चाहिये, इसीमें बुद्धिमानी है। ऐसी वस्तु परमात्मा है जो सत्य, सनातन

एवं नित्य है। उस परमात्मासे एक बार संयोग होनेपर फिर कभी वियोग हो ही नहीं सकता। इसलिये बुद्धिसे नास्तिक भावको हटाकर आस्तिक भाव भरना चाहिये। संशय, भ्रम, अज्ञान आदि कूड़े-करकटको विचारपूर्वक सद्‌बुद्धिसे हटाना चाहिये। इसी प्रकार मनमें भी सुन्दर भावका अच्छा माल भरना चाहिये।

मनमें माल भरना—मनमें दिनभर संसारका चित्र रहता है, रात्रिकालमें स्वप्नावस्थामें भी मन उसीको सँभालता है। इस प्रकारका यह सांसारिक चिन्तन बड़ा भारी घातक है। भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं—

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

(गीता ८। ६)

५ हे अर्जुन! यह पुरुष जिन-जिन भावोंको स्मरण करता हुआ मरते समय शरीरको छोड़कर जाता है, मरनेके बाद उन्हींको प्राप्त होता है; क्योंकि नित्य-निरन्तर जिन चीजों एवं भावोंका विशेष स्मरण रहता है, मृत्युकालमें भी ये ही स्मरण आते हैं। मृत्युकालमें यदि मनमें फालतू चित्र स्मरणमें आयें तो बस, सत्यानाश ही समझना चाहिये। इसलिये मरते समय इस प्रकारके चित्रोंको देखना चाहिये जो मुक्तिको देनेवाले हों। अपने कमरोंमें भगवान्‌के चित्र लगाने चाहिये ताकि मरते समय उनके दर्शन एवं स्मरणसे कल्याण हो सके। गीताभवनमें इसीलिये पूरी गीता एवं रामायणकी बढ़िया चौपाइयाँ, शिक्षाप्रद दोहे एवं भगवान्‌के चित्र लगवाये गये हैं। इसलिये मनमें अच्छे कल्याण देनेवाले चित्र अंकित करने चाहिये, पतन करानेवाले संसारके चित्र नहीं।

इन्द्रियोंमें माल भरना—नेत्रोंको बन्द करके भगवान्‌के नाम, धाम, लीला एवं स्वरूपका चिन्तन करना चाहिये। नेत्रोंके भावको शुद्ध बनाना चाहिये। माताओं, बहनोंको पापदृष्टिसे नहीं देखना चाहिये। इसी प्रकार माताओं, बहनोंको पुरुषोंके प्रति कामदृष्टि नहीं रखनी चाहिये। नेत्रोंको शुद्ध बनानेके लिये सूर्य भगवान्‌के दर्शन करने चाहिये, इससे पापोंका नाश होता है एवं नेत्रोंसे महात्माओं एवं देवताओंके दर्शन करने चाहिये, इससे पापोंका नाश होता है। नेत्रोंकी शुद्धिकी पहचान क्या है? स्त्रियोंको देखनेपर मनसे उनके प्रति मातृभावका पैदा होना और सबमें भगवद्भाव समझना। भगवान् कहते हैं—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

(गीता ७। १९)

सब प्राणियोंमें भगवद्भाव रखनेवाला इस प्रकारका महात्मा सुदुर्लभ है। भगवान्‌के गीतामें और भी वचन हैं—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६। ३०)

जो सब जगह मुझको देखता है और सब कुछ मुझमें देखता है इस प्रकारके भक्तके लिये मैं अदृश्य नहीं होता हूँ और ऐसा मेरा भक्त मेरे लिये अदृश्य नहीं होता। अभी नेत्रोंके सम्मुख सांसारिक विषयभोग हैं, फिर नेत्रोंके सम्मुख भगवान् हो जायँगे। नेत्रोंसे भगवान्‌का मानसिक रूपमें दर्शन करना चाहिये एवं उनसे भाषण तथा उनका स्पर्श भी करना चाहिये। नेत्रोंसे सत्‌शास्त्रोंका स्वाध्याय करना चाहिये। इसी प्रकार कानोंसे अपनी आत्माका कल्याण

करनेवाली, परमहित करनेवाली बात ही सुननी चाहिये। इस प्रकार आँख और कान ये दो प्रधान इन्द्रियाँ हैं। बाकी इन्द्रियाँ गौण हैं। इसी प्रकार और सभी इन्द्रियोंसे काम लेना चाहिये। वाणीसे भगवान्‌के गीत गाने चाहिये, अन्यथा मौन रहना चाहिये। झूठ बोलनेकी अपेक्षा मौन रहना अच्छा होता है। मौन रहनेसे भी श्रेष्ठतम कार्य वाणीसे सत्शास्त्रोंका स्वाध्याय एवं सद्ग्रन्थोंका पठन एवं सत्य और प्रिय वचनोंका बोलना है।

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयात् ह्येष धर्मः सनातनः॥

प्रिय लगनेवाले सत्यका भाषण करना चाहिये, सत्य बात अगर अप्रिय कठोर लगनेवाली हो तो नहीं कहनी चाहिये और झूठी बात यदि प्रिय लगनेवाली हो तो उसका भी भाषण नहीं करना चाहिये—यह सनातन धर्म है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥

(गीता १७। १५)

भगवान्‌ने वाणीका तप बतलाया है, पहले वचनमें भगवान्‌ने मनुष्योंको नरकसे बचनेका उपाय बतलाया है। **अनुद्वेगकरं वाक्यं** यानी सुननेपर दूसरेको उद्वेग न हो, इस प्रकारका वचन बोले। फिर भगवान्‌ने लाभकी उपदेशकी बात बतलायी। **सत्यं प्रियहितं च यत्** यानी सत्य वचन बोले।

साँच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदे साँच है ताके हिरदे आप॥

सत्यभाषणसे उद्धार हो सकता है, सत्यमें भगवान्‌का निवास है। सत्यके साथ-साथ प्रिय हो ऐसी ही बात बोलनी चाहिये,

अप्रिय सत्य नहीं कहना चाहिये। **सत्यं प्रियहितं** यानी सत्य, प्रिय होकर दूसरेका हित, परोपकार करनेवाला होना चाहिये, ताकि परोपकार करके अपना भी उद्धार हो सके। दूसरेको जिस वाणीको सुनकर उद्वेग हो, इस प्रकारकी वाणीसे बचकर पापसे बचना चाहिये। धर्मशास्त्र गीता-रामायणादिका स्वाध्याय करना चाहिये। स्वाध्यायके अभ्याससे वाणीके दोष नष्ट हो जाते हैं। जिस प्रकार आगसे ईंधन नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार हमारी आत्मा एवं वाणी शुद्ध हो जाय, इस प्रकारका स्वाध्यायका अभ्यास करना चाहिये। इसी प्रकार अन्य सारी इन्द्रियोंको शुद्ध कर लेना चाहिये। हाथोंसे परोपकार, सेवा, दान आदि देकर पवित्र बनाकर कल्याण एवं आत्मोद्धार करना चाहिये। पैरोंसे तीर्थोंमें जाना चाहिये एवं गंगास्नान करना चाहिये। मन्दिरोंमें जाकर देवताओंके दर्शन करने चाहिये एवं महापुरुषोंके पास जाकर उपदेश सुनना चाहिये। जितनी इन्द्रियाँ हैं उनसे आत्मोद्धारमें सहायता देनेवाले सभी शुभ कर्मोंका अभ्यास डालकर अन्त:करणको पवित्र बना लेना चाहिये। इस प्रकार साधन करते रहनेपर भी इस जन्ममें भगवान्‌की प्राप्ति न हुई तब भी कोई खतरेकी बात नहीं। क्योंकि इस जन्मके अच्छे संस्कारोंके फलस्वरूप मरनेके बाद फिर श्रेष्ठ पुरुषोंके घरमें जन्म होता है, जिससे जीवात्मा अपना कल्याण कर सकता है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्॥

(गीता ६। ४२)

इस प्रकार श्रेष्ठ पुरुषोंके घरमें जन्म लेना बहुत दुर्लभ है।

इस प्रकार जन्म लेनेके बाद साधक पूर्वजन्मके संस्कारोंके फलस्वरूप भगवत्सिद्धिके लिये जुट जाता है एवं अपनी आत्माके कल्याणके लिये फिरसे प्रत्यत्न करता है। इसी भावको भगवान्ने इस प्रकार प्रकट किया है—

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन॥

(गीता ६। ४३)

पूर्वजन्मका उस श्रेष्ठ साधकका जिस प्रकारका साधन रहा है, उसीके अनुसार वह फिर साधनको पकड़ता है। यदि वह साधक इसके लिये चेष्टा नहीं भी करना चाहे तो साधनके लिये पूर्वजन्मके अभ्यासके कारण बलात् प्रेरित किया जाता है एवं जो साधनमें कमी रहती है उसकी पूर्ति कर ली जाती है।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते॥

(गीता ६। ४४)

पूर्वजन्मके संस्कारोंसे प्रेरित बलात् साधनमें लगाया जाता है इस प्रकार जिज्ञासु साधक 'शब्दब्रह्म' का उल्लंघन कर जाता है। तर जाता है; संसारको शब्दब्रह्म कहते हैं, वेदोंमें जिसका वर्णन किया गया है। इसलिये बुद्धिको अभीसे इस काममें लगा देना चाहिये, जिससे संसारसे सम्बन्ध ही न रहे। जिस संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद होना है, उसमें सम्बन्ध जोड़नेके लिये समयका दुरुपयोग करना कितनी बड़ी मूर्खता है। इसलिये सांसारिक ऐश-आराममें अमूल्य समयको नष्ट न करके अपना समय परमार्थमें लगाना चाहिये।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

❑❑

वर्तमानमें ब्राह्मणोंके कर्तव्य एवं
५ निष्कामभावकी महिमा

पहले जो ब्राह्मणोंका कर्तव्य था, वही कर्तव्य इस समय भी है। इस समय कलियुगमें आपत्तिकाल लागू पड़ सकता है। ब्राह्मणकी आजीविकाके लिये शिलोञ्छवृत्ति सबसे बढ़कर श्रेयस्कर बतलायी गयी है जो बिलकुल बंद हो गयी है। शिल और उञ्छ दो प्रकारकी वृत्तियाँ बतलायी गयी हैं। शिल—खेतोंमें जब गेहूँ, बाजरा, जौ, धान आदि पैदा होते हैं तब इनको काट लेनेपर जब दुबारा अन्न पैदा हो जाता है उसको शिल कहते हैं, उस शिलसे जीवन-निर्वाह करनेका नाम शिलवृत्ति कहा गया है। इस प्रकारकी शिलवृत्तिका आजकल अत्यन्त अभाव हो गया है, क्योंकि खेतके मालिक शिल लेने ही नहीं देते।

उञ्छवृत्ति—मोठ, चना, गेहूँ, बाजरा, ज्वार आदि बाजारमें जहाँ बिक्री होते हैं, वहाँ इनके कुछ दाने गिर जाते हैं। उन दानोंको जमीनसे बीनकर जो ब्राह्मण अपनी आजीविकाका पालन करता है उसको उञ्छवृत्ति कहते हैं, इसी उञ्छवृत्तिको कपोत वृत्ति भी कहा जाता है। इस प्रकारकी वृत्तिसे काम चलानेवाले ब्राह्मणको ऋषि ब्राह्मण कहा गया है। इस प्रकारकी वृत्तिको ऋतवृत्ति भी कहा गया है जो कि अमृतसे भी बढ़कर बतलायी गयी है। लेकिन शिलोञ्छवृत्तिसे अगर काम न चले, जीविका निर्वाह न हो सके तो ब्राह्मणके लिये ये षट्कर्म बतलाये हैं—दान लेना, दान देना, यज्ञ करना, यज्ञ करवाना, विद्या पढ़ना एवं विद्या पढ़ाना। इनमेंसे तीन कर्म तो जीविका-निर्वाहके लिये एवं तीन कर्म आत्माके कल्याणके लिये बतलाये गये हैं। यज्ञ करना,

---

प्रवचन—दिनांक २२ मार्च १९५०, सायंकाल ४.३० बजे।

दान देना एवं विद्या पढ़ना—ये तीन कर्म कल्याण करनेवाले हैं। इन कर्मोंको निष्कामभावसे करनेपर अन्त:करणकी शुद्धि होकर कल्याण हो जाता है। आजीविकाके लिये यज्ञ कराना, दान लेना एवं विद्या पढ़ाना—ये तीन कर्म बतलाये गये हैं। अध्यापन कराकर दक्षिणा लेना, यज्ञ करवाकर जिसे कर्मकाण्ड भी कहते हैं दक्षिणा लेना एवं दान लेना। इस प्रकार तीन वृत्तियोंसे ब्राह्मणको अपना निर्वाह करना चाहिये। इन तीन प्रकारकी वृत्तियोंमें यज्ञ करवाकर, विद्या पढ़ाकर, दक्षिणा लेकर जो जीविकाका निर्वाह किया जाता है, इस प्रकारकी वृत्तिको श्रेष्ठ बतलाया गया है, इसको सत्यवृत्ति कहा गया है। दान देनेवाला आग्रहपूर्वक दे तभी दान ग्रहण करना चाहिये। माँगकर नहीं लेना चाहिये। इस प्रकारकी वृत्तिको अयाचित वृत्ति भी कहते हैं और इस प्रकारका दान लेना अमृतपानके तुल्य है, इसलिये इस दानको भी अमृतवृत्ति कहा गया है। इसके विपरीत जो दान माँगकर लिया जाता है उस दानको मृतवृत्ति कहते हैं। दोनों प्रकारकी वृत्तियोंमें उतना ही अन्तर है जितना कि एक जीवित एवं मृत शरीरमें होता है। दान भी उतना ही लेना चाहिये जितना विशेष आवश्यक हो, संग्रह नहीं करना चाहिये। एक दिनसे अधिकका संग्रह नहीं करना चाहिये। इतनेसे काम न चले तो तीन दिनके लिये संग्रह कर सकते हैं। इससे भी काम न चले तो एक कुम्भ अर्थात् एक घड़ेमें जितना अन्न समाये उतना ही इकट्ठा करना चाहिये। आखिरी मर्यादा एक मासतकके निर्वाहके लिये अन्न संग्रह करनेकी बतलायी गयी है। इससे अधिक संग्रह करनेसे सन्तोषमें हानि होती है एवं अन्नमें जीव पड़नेकी सम्भावना रहती है। इसलिये मनाही की गयी है। इसलिये जितने अन्नसे जीवन यापन हो उतना ही संग्रह करना चाहिये, बल्कि उससे भी कमका ही

संग्रह करना और श्रेष्ठ है। इसी प्रकार बहन-बेटियोंको भी समझनेकी आवश्यकता है। पीहरवाले अपनी प्रसन्नतासे जो कुछ भी देना चाहें उससे भी कम लेनेकी ही नीयत रखनी चाहिये। इस प्रकारकी उपर्युक्त वृत्तिको त्याग—अमृतवृत्ति कहा गया है। मृत वृत्तितक तो शास्त्रविहित वृत्तियाँ है, यदि उपर्युक्त वृत्तियोंसे काम न चले तो फिर अध्यापक वृत्तिसे काम चलाना चाहिये। इस प्रकारकी वृत्तिके भी दो भेद हैं एक तो आचार्य वृत्ति एवं दूसरी अध्यापक वृत्ति। आचार्य वृत्ति श्रेष्ठ है। आचार्य वृत्ति उसको कहते हैं, जिसमें आचार्य शिष्यको पाँच-दस वर्षतक अपने खर्चेसे पढ़ाता है। जब उसकी पढ़ाई पूरी होकर उसको विदा किया जाता है, उस समय आचार्य शिष्यसे गुरुदक्षिणाके रूपमें दक्षिणा लेकर अपना निर्वाह करे, इसको आचार्य वृत्ति कहते हैं। अध्यापक वृत्तिसे अध्यापक हर महीने अपने शिष्यसे दक्षिणा ले सकता है। आजकल कलियुग है, अत: आपत्तिकालमें आचार्य वृत्ति नष्टप्राय हो चुकी है। अत: अध्यापक वृत्तिसे ही काम चलाया जा सकता है। अध्यापक वृत्ति एवं आचार्य वृत्तिसे भी अगर काम न चले तो क्षत्रिय वृत्तिसे काम चलाना चाहिये। जमींदारीका काम किया जा सकता है। जमींदारीके कामसे निर्वाह न हो तो मंत्री, अधिकारी आदि शासन सत्ताका कार्य सँभालकर भी जीविका चला सकते हैं। जिस प्रकार विश्वामित्र, वसिष्ठादि ऋषि श्रीरामचन्द्रजीके समयमें अपनी जीविका शासन सत्ता सँभालकर चलाया करते थे एवं अन्य शास्त्रोंमें भी इस प्रकारके उदाहरण पाये जाते हैं। जमीन खरीदकर किसानोंको खेतीके लिये जमीन देकर उनसे कर लेकर जीविका चलानेको जमींदारी कहते हैं। जिस प्रकार क्षत्रिय लोग चलाते थे। इसके अतिरिक्त और भी कलाओं बाणविद्या, शिल्पविद्यादिके द्वारा अपनी

जीविका चला सकते हैं। जिस प्रकार द्रोणाचार्यजी बाणविद्यासे एवं विश्वकर्माजी शिल्प विद्यासे अपना जीवनयापन करते थे। इस तरह क्षत्रिय वृत्तिसे काम नहीं चले तो वैश्य वृत्तिसे भी काम चलाया जा सकता है। वैश्य वृत्ति क्या है? व्यापार करना, गोरक्षा, खेती करना एवं ब्याज लेना। इन वृत्तियोंमेंसे ब्राह्मणके लिये ब्याज लेना मना है एवं हल चलाना भी निषिद्ध है तथा गोरस बेचना भी निषिद्ध बतलाया गया है, इस प्रकार कृषि, ब्याज लेना एवं गायोंसे निर्वाह करना—ये तीनों वृत्तियाँ तो ब्राह्मणके लिये निषिद्ध हो गयीं। बाकी रहा केवल क्रय-विक्रय यानी व्यापार करना इससे अपना जीवनयापन करना चाहिये।

व्यापार, वैश्यवृत्तिसे काम न चले तो शिल्प आदि किसी भी कलाकी सहायतासे परिश्रम करके जीवनयापन करना चाहिये। इस प्रकार ब्राह्मणोंके लिये आत्मोद्धार एवं जीवनयापनके कर्म बतलाये गये हैं। यज्ञ करना, दान देना, विद्या पढ़ना, तप करना, भक्ति करना इत्यादि सद्‌गुण, सदाचार आत्माका उद्धार करनेवाले हैं। आत्मोद्धारके इन सभी साधनोंको निष्कामभावसे करना चाहिये। इनके अतिरिक्त जीविकाके निर्वाहके लिये भी जो कार्य बतलाये गये हैं, उनको भी यदि निष्कामभावसे किया जाय तो वे मुक्तिके देनेवाले होते हैं। प्रश्न उठता है कि जीविका-निर्वाहके साधन भी निष्कामभावसे किस प्रकार किये जायँ। यदि जीविका-निर्वाहके साधनोंमें कामना नहीं रखी जाय तो काम किस प्रकार हो एवं कामना रखी जाय तो वे सकाम हो जाते हैं। निष्कामसे किस प्रकार जीवनयापन हो सकता है यह बतलाया जाता है। किसी भी कामको करनेमें दो चीजें प्रधान होती हैं। १-उद्देश्य, २-इच्छा। कर्तव्य कर्मोंको करनेका भगवत्-प्रीत्यर्थ उद्देश्य रखना चाहिये। उस कर्मको करके उसके फल-प्राप्तिकी इच्छा नहीं रखनी

चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको युद्ध करना क्षत्रियका धर्म बतलाया है। युद्धमें अपनी विजय हो, क्षत्रियको इस प्रकारका उद्देश्य भी रखना चाहिये। लेकिन उसकी फलप्राप्तिमें समान भाव रखना चाहिये। फलप्राप्तिमें समता आ जानेपर निष्कामभाव आ जाता है एवं रागद्वेषकी स्थितिमें समताकी जगह विषमता आ जाती है। भगवान् गीतामें कहते हैं—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥

(गीता २। ३८)

सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजयमें समानभाव रखकर युद्धके लिये तैयार हो जा, फिर तू पापका भागी नहीं होगा। ईश्वरकी भक्ति सकाम हो चाहे निष्काम, दोनों ही कल्याण करनेवाली हैं। लेकिन निष्कामभाव सकामकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। प्रश्न उठता है कि सकामभावसे उपासना करनेपर तो कामना भी सिद्ध होती है एवं भगवत्प्राप्ति भी होती है। निष्कामभावसे उपासना करनेपर केवल भगवत्प्राप्ति ही होती है। अत: सकामभावसे कामना सिद्धि एवं भगवत्प्राप्ति दोनों मिलते हैं, निष्कामभावसे केवल भगवत्प्राप्ति मिली। अत: सकामभावको श्रेष्ठ मानना चाहिये? सकामभावकी अपेक्षा निष्कामभाव श्रेष्ठ है, क्योंकि निष्कामभावका दर्जा उत्तम है। सकामभावका उतना आदर नहीं है, जितना आदर निष्कामभावका है। जिस प्रकार ध्रुवजीने राज्य पानेके लिये सकामभावसे भगवान्‌की उपासना की एवं प्रह्लादजीने निष्कामभावसे साधना की, ऊँचा दर्जा प्रह्लादजीका ही रहा। जब भगवान् प्रह्लादजीको दर्शन देते हैं तब प्रह्लादसे कहते हैं मुझे आनेमें विलम्ब हो गया, प्रह्लाद! मुझे क्षमा करो। इस प्रकार भगवान् भी प्रह्लादसे क्षमा माँगते हैं। प्रह्लाद भक्त-

शिरोमणि हो गये। इस प्रकार सकामभावसे निष्कामभावकी श्रेष्ठता समझनी चाहिये। भगवान् गीतामें अर्जुनसे कहते हैं—

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥

(गीता ११। ५३)

मैं वेदाध्ययन, तपस्या, दान देने एवं यज्ञादि सकामकर्म करनेसे इस प्रकार नहीं देखा जा सकता हूँ जिस प्रकार हे अर्जुन! तुमने मुझको देखा है। इससे सिद्ध होता है कि सकामकर्मोंके करनेसे भगवत्प्राप्ति नहीं होती। निष्कामभावसे उपासना करनेपर भगवान्‌की प्राप्ति होती है। भगवान् भगवद्गीतामें कहते हैं—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥

(गीता ९। २७-२८)

हे अर्जुन! जो भी कुछ करता है, जो खाता है, जो हवन आदि करता है, जो कुछ दान देता है, जो कुछ तपस्या करता है, उन सभी कर्मोंको मेरे अर्पण कर दे। इस प्रकार तू शुभ, अशुभ कर्मोंके बन्धनसे मुक्त हो जायगा एवं निष्कामभाव पैदा हो जानेपर तू मेरे स्वरूपको प्राप्त हो जायगा। भक्ति तो सकाम भावसे भी की जा सकती है, लेकिन कर्म निष्कामभावसे करने चाहिये। अन्य देवताओंकी उपासना उनको भगवान्‌से भिन्न माननेसे अविधिपूर्वक है, इसलिये उसमें सकामभाव नहीं रखना चाहिये। उसमें निष्कामभाव रखकर उपासना करनेपर अन्तःकरणकी शुद्धि होकर भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। राजा रन्तिदेव निष्कामभावसे चाण्डाल एवं कुत्तोंको भोजन करवा रहे हैं। उनके

भावके कारण ब्रह्मा, विष्णु, महेश प्रकट होकर दर्शन देते हैं। निष्कामभावसे कुत्ता, चाण्डाल, गधा, स्थावर, जंगम किसीकी भी उपासना करनेपर मुक्ति हो सकती है। **सुखदु:खे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।** सुख-दु:ख, लाभ-हानि, जय-पराजय प्रत्येक क्रियाओंमें फलकी प्राप्ति, आसक्तिसे रहित होकर निष्कामभावसे सब कर्म करने चाहिये।

इसी प्रकार वैश्य भाइयोंको व्यापार भी निष्कामभावसे करना चाहिये। लोकहितकी दृष्टि रखकर व्यापार करना चाहिये। व्यापार भी निष्कामभावसे किया जा सकता है। अपने गीताभवनमें घी, चीनी, चावल, अन्न, नमक, मसाले सब चीजें दी जाती हैं, यह व्यापार हो गया। इस व्यापारमें सब लोगोंका काम चलाने एवं उनके हितकी दृष्टि रखी गयी है। अपना इसमें किसी प्रकारका स्वार्थ सम्बन्ध या लाभकी दृष्टि नहीं है। जो भाई लोग इस कामको करते हैं, उनके खर्चके लिये इस काममें लाभ रखकर इस कामको चालू रखा जाता है। इसलिये यह व्यापार होते हुए भी इसमें स्वार्थ नहीं है। अत: यह निष्कामभाव हो गया। इसी प्रकार कहीं बाढ़ या भूकम्प आदि आकस्मिक प्रकोप हो गया, इस प्रकारकी दयनीय स्थितिमें कुछ लोग दस हजार रुपये पीड़ित लोगोंकी सहायताके लिये बाँटनेके लिये गये एवं इसी प्रकार एक अन्य भाई दस हजार रुपयोंका सामान गल्ला, वस्त्र आदि लेकर गये एवं सभी सामान लागत मूल्यपर बिना लाभके बेच आये तथा दस हजारकी पूँजी लेकर वापस अपने घर आ गये एवं दूसरे भाईने दस हजार रुपये अनाथोंमें बाँट दिया। यदि दोनों भाइयोंकी क्रियाएँ निष्कामभावसे हुईं तो दोनोंका ही कल्याण हो गया, यदि दोनोंने सकामभावसे किया तो फिर गड़बड़ है, मुक्ति नहीं है। इसके अतिरिक्त बाढ़,

भूकम्पादि पीड़ित लोगोंसे जो लोग व्यापार करके अनुचित लाभ दुगुना-चौगुना कमाते हैं, वस्तुओंके अभावमें मनमाने दाम लेते हैं, पीड़ितोंको तो शरीर-निर्वाहके लिये खरीदना पड़ता है, ऐसे लोग नरकके भागी होते हैं, क्योंकि आतुरोंको और आतुर बनाना पापकर्म है। किरासिन, गल्ला, कपड़ा, जूता किसी भी प्रकारका आप व्यापार करते हैं। जिस प्रकार दूकानमें एक मुनीम रखा जाता है और उसका खर्च दूकानसे निकाला जाता है, उसी प्रकार अपनी दूकानको अपनी दूकान नहीं समझकर उसे भगवान्‌की दूकान समझना चाहिये एवं अपनेको मुनीम समझकर कमसे कम खर्च लगाकर अपना शरीर-निर्वाह करना चाहिये, पूँजी एवं दूकान सब भगवान्‌की समझनी चाहिये। जिस प्रकार गीताप्रेसमें बहुत-से भाई लोग केवल अपने शरीर-निर्वाहका ही खर्च लेकर काम करते हैं। जिस प्रकार गंगा प्रसादजी केवल भोजन मात्रका खर्च लेते हैं, शम्भूनाथ चौबेजी, शुकदेवजी अपने घरवालोंको एक पैसा नहीं भेजते। **शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्** गीता ४। २१। शरीर-निर्वाह मात्रकी दृष्टिको रखकर कर्म करते हुए यह मनुष्य पापको प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार निष्कामभावसे साधन करनेसे मुक्ति हो जाती है। इसके अतिरिक्त एक भाई काम करते हैं रुपये या पैसा भी नहीं लेते। काम कर रहे हैं, लेकिन भीतरमें मान, बड़ाई प्राप्त करनेकी इच्छा है, तब मामला गड़बड़ है। उससे मुक्ति नहीं हो सकती, क्योंकि रुपये न लेनेसे तज्जनित मान, बड़ाईका सुख आपको मिल गया। बस, वहीं खाता डेढ़ा हो गया। एक ही लाभ आप उठा सकते हैं, दोनों नहीं। अत: सकाम कर्मका परित्याग करके निष्कामभावकी भक्ति करनी चाहिये, व्यापार भी निष्कामभावसे करना चाहिये।

अपने पास कपड़ा, सूत, गल्ला या किरासिनका कोई भी

काम है एक गरीब भाई है, उसको अपने व्यापारसे दो पैसोंकी प्राप्ति हो जाय—इस प्रकारका लक्ष्य रखना चाहिये। जिस प्रकार अपने सूत या किरासिनके काममें आयकी सम्भावना है, गाँठ कपड़ा गरीब भाईके नामसे खरीदकर लाभ उसको दे दिया, उससे गरीब भाईका काम भी चल गया एवं अपनी रकम भी बनी रही। इसी प्रकार अपने पास अन्न पड़ा है। गेहूँ बीस रुपये मनका खरीदा पड़ा है, भावोंमें तेजी आ गयी, बीसकी जगह बढ़कर पचीस रुपये मन हो गया, पाँच रुपये तेजी आ गयी। दूसरे कमजोर परिस्थितिवाले भाईको आपने बीस रुपये खरीदा हुआ गेहूँ बाईस रुपये मनके हिसाबसे दे दिया, आपको दो रुपये मनका लाभ मिल गया एवं उस भाईका काम भी निकल गया। गृहस्थको दान लेनेका धर्म नहीं है एवं संकोच स्वाभाविक रहता है। अत: जिनकी परिस्थिति आप कमजोर समझते हैं उनसे अपना लाभ नहीं लेकर खरीद दामोंमें चीज देनी चाहिये। इस प्रकारकी चीजको ग्रहण करनेमें उनको हिचक भी नहीं रहेगी। जैसे एक भाईको कम्बलकी विशेष आवश्यकता है, सर्दीका मौसम है, आप यदि उसको दस रुपये सहायता देना चाहते हैं कि पन्द्रह रुपये अपने मिलाकर पचीस रुपयेमें कम्बल खरीद लो तो सम्भवत: वह तैयार न भी हो। इसके बदलेमें दूसरे तरीकेसे काम लेना चाहिये। भाई साहब यह कम्बल अपने पन्द्रह रुपयोंमें सस्तेमें ली हुई है आप ले लीजिये, आपसे मुनाफा क्या लें, ऐसी स्थितिमें वे कम्बल ग्रहण कर सकते हैं। उनको संकोच भी कम होगा। इस प्रकारका साधन कल्याण करनेवाला होता है। इसमें भी यदि उपरोक्त तरीकेसे उपकार करनेके बाद उसको गिनाते हैं एवं मौका पड़नेपर उसे ताना मार देते हैं या अन्य समाजमें अपने किये उपकारकी डुंडी पिटवाते हैं तो बस, सब

गुड़ गोबर हो जाता है, वहीं मामला समाप्त समझना चाहिये। लेकिन निष्कामभावसे कर्म करनेपर अन्त:करणकी शुद्धि होकर भगवान्‌की प्राप्ति होती है। ऐसे ही दूकानदार भाइयोंको चाहिये कि दूकान एवं पूँजीको भगवान्‌की समझकर अपने तो बस, प्रसाद मात्र शरीर-निर्वाह भरके लिये लेवें, प्रसाद लिये बिना शरीर किस प्रकार चले, यह तो भगवान्‌का प्रसाद है। जिस प्रकार गाय है, उसको खिलाये बिना वह दूध किस प्रकार दे, ऐसे ही भगवान्‌का प्रसाद पाये बिना अपना शरीर-निर्वाह किस प्रकार हो। अपने तो भगवान्‌की दूकानसे बस, प्रसाद पाते हैं, इस प्रकारका सुन्दर भाव रखना चाहिये। ईश्वरकी भक्ति भी मुक्ति देनेवाली है एवं निष्कामभाव भी मुक्ति देनेवाला है, यदि दोनों शामिल हो जायँ तो तुरन्त मुक्ति हो जाय। इसलिये सभी कर्म निष्कामभावसे करने चाहिये। सब कर्म निष्कामभावसे करनेके बाद भी यदि मनमें यह अभिमान आ गया कि मैंने यह कर्म निष्कामभावसे किया तो वह निष्काम भाव सकाम भावमें बदल जाता है, क्योंकि जहाँ यह प्रकट करनेकी इच्छा मनमें है, समझना चाहिये वहाँ मान, बड़ाईकी कामना बाकी है। यदि मान, बड़ाईकी कामना न हो तो फिर कहनेकी क्या आवश्यकता है। अत: निष्कामभावसे सब कर्म करनेके बाद भी उसको प्रकट करना उसमें कलंक है, धब्बा है। अत: बहुत समझकर साधन करनेकी आवश्यकता है। थोड़ा फिसले बस, सब समाप्त है। निष्कामभावका एक सुन्दर उदाहरण स्मरण आ गया, ध्यान देकर सुनें।

एक राजा था। साधन करते-करते उसको भगवत्-साक्षात्कार हो गया, वह जीवन्मुक्त हो गया। तब राजाके मनमें विचार आया कि मेरी तरह मेरे राज्यमें और भी जीवन्मुक्त पुरुष हैं या नहीं, इस बातकी परीक्षा करनी चाहिये। राजाने एक उपाय निकाला। अपने

सेवकोंसे बुलाकर कहा—तुमलोग प्रत्येक घरमें जाकर पूछो कि राजा साहबको एक अमूल्य चीज मिली है, उसका क्या करना चाहिये। जो आदमी जैसा उत्तर दे, उस आदमीका नाम पते सहित लिखकर ले आना। राजाके कर्मचारी लोगोंसे पूछने लगे, लोगोंको आश्चर्य हुआ क्या बात है? पर राजा साहबकी बात है, अत: लोगोंने अपनी समझका उत्तर दिया। किसीने कहा तिजोरीमें रख लो, किसीने कहा विश्वासी व्यक्तिके पास रखनी चाहिये, किसीने कहा अपने पास रखनी चाहिये, किसीने कहा उचित उपयोग करे। सबको लिख लिया। एक महात्माने उत्तर दिया—अमूल्य चीजकी प्राप्ति हो गयी तो हल्ला क्यों मचाते हैं? सभीकी बातोंकी सूची राजा साहबको प्रस्तुत की गयी। राजा साहबने देखा कि और सबने तो अँधेरेमें तीर मारे हैं जिसने कहा अमूल्य चीज मिली है तो हल्ला क्यों मचाते हैं, यह उत्तर ठीक है, वास्तविक उत्तर है, इससे मिलना चाहिये। राजा साहबने अपना विचार कर्मचारियोंसे बतलाया। कर्मचारियोंने कहा उनको यहाँ बुला देते हैं। राजा साहबने कहा उनको बुलानेकी हमारी सामर्थ्य नहीं है, मैं ही उनके पास जाऊँगा। राजा साहब हाथीपर चढ़कर उनके पास गये। राजाको देखकर वे खड़े हो गये। राजाने देखा—वे भुने हुए चने बेचते हैं। राजा साहब हाथीसे उतरे, महापुरुषने बैठनेके लिये बोरी दे दी। बोरीपर बैठकर राजा साहबको खूब आनन्द आया जो मखमली गद्दोंपर नहीं आता है। राजा साहबने पूछा—अमूल्य वस्तुकी प्राप्ति हो गयी तो हल्ला क्यों मचाते हो—यह उत्तर आपने दिया था क्या? महाराज मुझसे कोई अपराध तो नहीं बन गया? कैसा अपराध, मैं तो आपका उत्तर सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। महात्माजी उत्तर देते हैं आपकी इच्छा। राजाने कहा—आपका उत्तर यथार्थ एवं अनुभव पूर्ण है। मैं आपपर प्रसन्न हूँ। महाराज! कोई वस्तु माँगिये।

महापुरुषने कहा मुझे तो किसी चीजकी आवश्यकता नहीं है। मैं जो भुने हुए चने बेचता हूँ उसमें एक डेढ़ रुपया बच जाता है, उससे घरका सब काम चल जाता है। एक दो आना कभी संग्रह हो जाता है तो अन्य सेवामें लगा देता हूँ। राजा साहबने कहा मैं भी कुछ सेवा करना चाहता हूँ। महापुरुषने कहा—मुझे सेवाकी आवश्यकता नहीं है। राजा साहबने कहा मेरे सन्तोषके लिये कुछ ग्रहण करना चाहिये। अधिक आग्रह करनेपर महात्माजीने कहा मुझे वचन दीजिये जो माँगूँगा वही देंगे। राजा साहबने सोच-समझकर कहा अच्छा माँगिये वचन देता हूँ जो माँगेंगे वही दूँगा। महात्माजीने कहा—मैं आपसे यही माँगता हूँ कि आप न तो मेरे पास कभी आयें और न मुझको कभी अपने पासमें बुलायें। राजाने कहा—मुझे अपने पास मत बुलाओ यह तो आपका कहना ठीक है, क्योंकि मेरा आपको बुलानेका क्या हक है? पर मुझको अपने पासमें आनेकी मनाही क्यों की—यह समझमें नहीं आया? महापुरुषने कहा—महाराज! अभी मजेमें आजीविका चल रही है, गुजारा हो रहा है। जब आप मेरे पास पधारेंगे, तब आपका मेरे पास आना-जाना देखकर लोग मेरे पास जुटने लगेंगे एवं अपने आर्थिक लाभादिके लिये आपसे सिफारिश करनेके लिये कहेंगे। यदि आपसे सिफारिश करूँ तो ठीक, अन्यथा वे लोग नाराज होंगे। मुझे व्यर्थ राग-द्वेषादिके प्रपंचमें पड़ना पड़ेगा। आपका मेरे पास आना किसी भी प्रयोजनसे ठीक नहीं। फिर आपको अमूल्य वस्तुकी प्राप्ति हो गयी है, इसलिये भी आपको आनेकी आवश्यकता समझमें नहीं आती। मुझे भी आपसे किसी प्रयोजनकी आकांक्षा नहीं है। राजा साहबने कहा आपका निष्कामभाव सच्चा है।

□□

निष्कामताकी व्याख्या

आज निष्कामभावके सम्बन्धमें कहनेका विचार है। सीढ़ी-दर-सीढ़ी श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर, श्रेष्ठतम बतलाया जाता है। स्थूल कामना, सूक्ष्म कामनातक पहुँचकर उसका भी बिलकुल अभाव होना असली निष्कामभाव है। स्थूल एवं सूक्ष्म सकामभावकी कई सीढ़ियाँ आपको बतलायी जाती हैं, खूब ध्यान देकर सुनना चाहिये। मनुष्य, ईश्वर, देवता, महात्मा या अन्य और किसीकी भी उपासना या सेवाकालमें किसी भी कामनाको रखकर जो कर्म किया जाता है उसको सकाम भाव, सकाम कर्म कहा जाता है, लेकिन ईश्वरकी सकाम भावकी उपासना बिलकुल न करनेकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। इससे भी मोटी बात, मोटी मान्यता जो किसी देवता, महात्माको ठेकेदारी देकर मनसे उपासना की जाती है कि मेरा अमुक काम हो जायगा तो आपकी पूजा, प्रसादादि करूँगा, ऐसी सकाम उपासना सबसे नीचे दर्जेकी है। पहले सेवा नहीं करनी, बल्कि पहलेसे ही यह ठहरा लेना कि अमुक काम करूँगा उसका ऐसा परिणाम मुझे मिलना चाहिये। वह पक्का बनिया है, एक नम्बंर स्वार्थी है। इसकी अपेक्षा भी वह साधक जो भगवान्, देवता, महात्माके प्रति करार करके भी पूजा, प्रसादादि नहीं करे, वह सबसे नीचा है। इसके लिये एक सुन्दर उदाहरण बतलाया जाता है। एक भाई मारवाड़में एक जाँटीके पेड़पर सांगरी तोड़ने चढ़ गया। सांगरी ऊँची थी, इसलिये वह ऊँचा चढ़ गया। संयोगसे उस समय वर्षा आ गयी, जोरसे आँधी चलने लगी। जिस पेड़पर वह चढ़ा था, उसकी

प्रवचन—दिनांक २४ मार्च १९५०, प्रातः ९.३० बजे।

डाल पतली थी। उसने समझा कि डाल हिल रही है, इसके टूटनेसे नीचे गिर पड़ूँगा, मेरी मृत्यु निश्चित है। उस समय वह हनुमान्‌जीकी मनौती मनाने लगा—हे हनुमान्‌जी! इस पेड़से नीचे सुरक्षित उतर आया तो पाँच रुपयेका प्रसाद चढ़ाऊँगा। जब वह सरलतासे उतर आया तब देखा कि अब गिर भी जाऊँ तो भय नहीं है, तब कहने लगा कि हनुमान्‌जी महाराज पाँचका नहीं चढ़ा सका तो ढाईका अवश्य चढ़ाऊँगा। और नीचे उतर गया तब ढाईकी जगह सवा रुपया कहने लगा। और नीचे उतर गया तब कहा एक नारियल चढ़ा दूँगा। बिलकुल नीचे धरतीपर उतर आया तब कहा—कोई पेड़पर चढ़े तो प्रसाद बोले, अब न तो पेड़पर चढ़ना है न प्रसाद बाँटना है। इस प्रकार उसने हनुमान्‌जीको भी धोखा दे दिया, ऐसे पुरुष भी होते हैं। इस प्रकारके आदमी सकामी भी नहीं, अपितु ठग कहे जाने चाहिये। यह तो ठगका उदाहरण बतलाया। सकाम भावकी कई श्रेणियाँ हैं। इसी प्रकार सांसारिक सुख-भोगकी प्राप्ति, रोग आदिको दूर करनेकी इच्छासे या मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा आदि प्राप्त करनेकी इच्छासे जो उपासना की जाती है वह निम्न श्रेणीकी है।

एक ऐसी बात है कि मूलमें तो निष्कामभाव है, लेकिन उसमें याचनाका भाव है तो भी उसमें दोष नहीं है।

उदाहरण—जिस प्रकार सत्संगके लिये भाई लोग आते हैं उन लोगोंके लिये सरकारसे याचना की जाती है कि हमलोगोंको अनाज मिलना चाहिये, किरासिन मिलना चाहिये, पेट्रोल मिलना चाहिये, भूमि मिलनी चाहिये एवं पुस्तकें छापनेके लिये कागज मिलना चाहिये। पुस्तक क्यों छापते हैं? क्योंकि उसमें लोगोंके हितकी, शिक्षाकी, आत्मकल्याणकी बातें रहती हैं, जिससे

उनका कल्याण होता है। स्थान किसलिये चाहिये, क्योंकि एकान्तमें बैठकर आत्मोद्धारके लिये ध्यान लगाया जाता है। पेट्रोल किसलिये चाहिये? बोटमें बैठकर स्वर्गाश्रमसे उस पार आवश्यक कामोंके लिये आने-जानेके लिये। किरासिन क़िसलिये चाहिये? रात्रिमें प्रकाशके लिये लालटेन जलानेके लिये एवं अन्न आदि खानेके लिये चाहिये। चीजें तो मिल जाती हैं, लेकिन मिलनेपर मूलमें यह समझना चाहिये कि उसमें अपना व्यक्तिगत स्वार्थका सम्बन्ध है क्या? यदि है तो सारी क्रिया सकाम है, धनका एवं व्यक्तिगत कोई स्वार्थ तो नहीं है, लेकिन इसमें मान, बड़ाईकी कामना है तो भी यह सारी क्रिया सकाम हो गयी। अपने आरामकी कामना या किसी पदको पानेकी कामना है तो भी सब सकाम है। अगर केवल मात्र लोगोंके लिये करना है तो वह सब कर्म निष्कामके तुल्य है, क्योंकि मूलमें व्यक्तिगत स्वार्थकी प्रधानता, रुपया, आराम, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा इनकी प्राप्तिकी कामना इसमें शामिल नहीं है। इसमें एक कल्याणकी भावना मात्र है, इसलिये यह निष्काम भावके तुल्य बतलाया गया है। इसमें भी अपने कल्याणकी भावनाकी अपेक्षा दूसरोंके हित, कल्याणकी भावना, कामना और भी श्रेष्ठ है, इसलिये मान, बड़ाईको मुक्ति एवं आत्मकल्याणमें बाधक समझकर उसका हृदयसे घोर विरोध करना चाहिये।

अपनी मुक्तिकी कामना करनेकी अपेक्षा दूसरेकी मुक्तिकी कामना करना श्रेष्ठ है, क्योंकि अपने लिये मुक्तिकी कामना करना भी साधनमें अटकानेवाली चीज है।

किसीके कल्याणके लिये भी याचना नहीं है, भगवान् जैसा उचित समझें करें, हमें तो उनके प्रीत्यर्थ सब कर्म करने हैं

भगवान् प्रसन्न होकर जो देना चाहें उसको भी नहीं ले, इस प्रकारका विशुद्ध भक्तियोग उच्चकोटिका साधन है। भगवान्‌की भक्ति अपना कर्तव्य समझकर करे एवं भगवान् मुक्ति देना चाहें तो उसको स्वीकार नहीं करे। इतना होनेपर भी यदि निष्कामताका अभिमान हो गया कि मैं निष्कामी हूँ तो इसको निष्कामभावमें कलंक, धब्बा मानना चाहिये। इसलिये भगवान्‌ने कहा है—

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥

(गीता २।७१)

जो सब प्रकारकी कामनाओंको छोड़कर स्पृहारहित, ममतारहित एवं अहंकाररहित आचरण करता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है।

❑❑

४ भगवान्के जन्म-कर्मकी दिव्यता

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

(गीता ४। ९)

हे अर्जुन! मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक हैं—इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्वसे जान लेता है, वह शरीरको त्यागकर फिर जन्मको प्राप्त नहीं होता, अपितु मुझे ही प्राप्त होता है।

इस श्लोकके भाव बड़े ही सुन्दर व आकर्षक हैं यदि हमलोग गीताका आदर करेंगे तो गीता भी हमारा आदर करेगी। श्रीगीताजी भगवान् श्रीकृष्णके मुखद्वारा कही गयी है, किन्तु लोगोंके भाव उसके प्रति नहीं हैं, इसीलिये हमलोग इसके महालाभसे वंचित रह जाते हैं। गीताके भावों एवं तत्त्वोंको मैं भी अच्छी प्रकार नहीं समझ पाता। यदि हमारा जीवन गीतामय हो जाता तो मैं भी गीताकी तरह ही संसारका उद्धार कर सकता। हमलोग गीताकी अल्प महिमा भी नहीं जानते हैं, और जानें भी कैसे? कोई महात्मा हों और हमं उनका आदर करनेकी अपेक्षा ठुकरायें तो हम उनसे कैसे लाभ प्राप्त कर सकते हैं। श्रीगीताजी आदर करनेकी चीज है, गीताकी पुस्तक मस्तकपर धारण करनेकी है। उसका हमें भगवान्की तरह आदर करना चाहिये, ताकि श्रद्धा बढ़े एवं विशेष लाभ हो। जिस प्रकार हम खेल-तमाशों, राजनीति, कानून आदिकी पुस्तकोंको रखते हैं, उन्हें जूतोंसे ठुकराते हैं, उनका कोई आदर नहीं करते, इस प्रकार गीताको रखनेसे कोई लाभ नहीं होता। श्रद्धा रखनेसे अग्नि भी

मुक्ति देनेवाली है अग्निसे ही हमें ताप मिलता है, हमारा भोजन पचता है, बनता है। जलाने व प्रकाश करनेवाली ही माननेपर अग्निमें श्रद्धा रखनेकी आवश्यकता नहीं है, उससे इतना लाभ तो सभी उठाते हैं, परन्तु वास्तविक तथा सच्चा लाभ तो श्रद्धासे ही उठाया जा सकता है, इसीलिये गीतामें श्रद्धा रखनेसे ही हम सब कुछ पा सकते हैं।

श्रीभगवान् कहते हैं—हे अर्जुन! मेरा जन्म दिव्य है, कर्म दिव्य है। मेरे और तेरे अबतक बहुत-से जन्म हो चुके हैं। परन्तु मेरा जन्म भी दिव्य है कर्म भी दिव्य है, जन्मका हेतु भी दिव्य है। जो इस बातको तत्त्वसे जान जाता है वह मुझको प्राप्त हो जाता है। कर्म यानी भगवान्‌की लीला, भगवान् जो कुछ आचरण करते हैं उनकी क्रिया एवं जन्म दिव्य है। प्रकट होनेकी क्रिया भी दिव्य है, जन्मका हेतु भी दिव्य है, धातु भी दिव्य है, सब चीजें अलौकिक हैं। जिसे जाननेका यह फल है कि मनुष्य आवागमनसे छूट जाता है और मुझको प्राप्त हो जाता है। जो महात्मा पुरुष होते हैं उनके भी सब कर्म दिव्य होते हैं। महात्माके तत्त्व एवं रहस्यको जो जान जाता है वह भी महात्मा हो जाता है। यह बात गीतामें है, मेरी बनायी हुई नहीं है—

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्॥

(गीता ४। १५)

श्रीभगवान् अर्जुनको उपदेश देते हैं कि मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंने मेरे कर्मोंके तत्त्वको जानकर कर्म किया वे भी इस तत्त्वको समझकर मुक्त हो गये। फिर सिद्ध पुरुषके कर्म तत्त्वको जानकर मुक्त हो जानेमें क्या सन्देह है। जिनके राग व

भय बीत गये हैं, जो मेरी शरणमें हैं—

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः॥

(गीता ४। १०)

पहले भी, जिनके राग, भय और क्रोध सर्वथा नष्ट हो गये थे और जो मुझमें अनन्यप्रेमपूर्वक स्थित रहते थे, ऐसे मेरे आश्रित रहनेवाले बहुत-से भक्त उपर्युक्त ज्ञानरूप तपसे पवित्र होकर मेरे स्वरूपको प्राप्त हो चुके हैं।

इससे आगेके श्लोकोंमें कर्मकी दिव्यता भरी हुई है। चौथे अध्याय ४ से १४ के श्लोकोंतक कर्मोंकी दिव्यता दीखती है। अध्याय चारमें भगवान्‌ने बतलाया है कि तेरे भी बहुत-से जन्म हो चुके हैं और मेरे भी बहुत-से जन्म हो चुके हैं, उन्हें तू नहीं जानता, मैं ही जानता हूँ, क्योंकि यदि तू जानता तो तेरा जन्म ही क्यों होता, तू मुझे प्राप्त हो जाता। जो मेरे जन्मकी दिव्यता जान जाता है, तत्त्व जान जानता है, उसका फिर जन्म नहीं होता। अर्जुनने पूछा कि आपमें मेरेमें क्या अन्तर है? जन्म आपके भी बहुत हुए हैं मेरे भी हुए हैं। भगवान् कहते हैं कि मेरे जन्म दिव्य हैं, तेरे साधारण हैं। मेरे शरीरकी धातु दिव्य है, मेरे जन्म लेनेका हेतु दिव्य है एवं क्रिया भी दिव्य है।

वह आपके समझनेकी चीज है, समझने मात्रसे कल्याण हो जाता है। भगवान्‌का शरीर दिव्य कैसे है? हमारा शरीर पाँच भूतोंका है, हाड़-मांसका बना हुआ है। भगवान्‌के शरीरका धातु चेतन है, अलौकिक है, दिव्य है। हमने पूर्व जन्ममें पाप किये हैं या पुण्य किये हैं। वह लोहे एवं सोनेकी बेड़ियाँ हैं। बन्धन है। इसीसे संसारमें आये। पूर्वमें नाना प्रकारके किये हुए कर्मोंका

फल भोगनेके लिये आये हैं, परन्तु माया भगवान्‌के अधीन है। हमलोग मायाके अन्दर फँस करके संसारमें बारम्बार जन्म लेते हैं। हम तीन गुणोंके द्वारा बँधे हुए हैं। सत्त्वगुणमें स्थित ऊपरके लोकोंको जाते हैं, रजोगुणमें स्थित मध्यमें एवं तमोगुणमें स्थित नीचे जाते हैं। भगवान् संसारमें क्यों आते हैं? यह बताते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

(गीता ४। ७-८)

हे भारत! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूपको रचता हूँ अर्थात् साकाररूपसे लोगोंके सम्मुख प्रकट होता हूँ।

साधु पुरुषोंका उद्धार करनेके लिये, पाप-कर्म करनेवालोंका विनाश करनेके लिये और धर्मकी अच्छी तरहसे स्थापना करनेके लिये मैं युग-युगमें प्रकट हुआ करता हूँ।

मेरे अवतारका कोई विशिष्ट समय नहीं है। जब भी आवश्यकता होती है तभी अवतार लेता हूँ। भगवान्‌के अवतारका हेतु धर्म-प्रचार, साधु-रक्षा, पापियोंका नाश करना है। हमारा जन्म हमारी आत्माके कल्याणके लिये, सुधारके लिये है। जिन्होंने जन्म लेकर यह कार्य नहीं किया वे फिर घोर पश्चात्तापकी अग्निमें जलते हैं। जैसा श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥

जो मनुष्यका शरीर पाकर भी अपनी आत्माका कल्याण नहीं

करते हैं वे फिर पछतायेंगे और पछताते हैं। वे लोग कालको दोष लगाते हैं। जैसे बहुत-से भाई कहते हैं कि क्या करें हमारा तो जन्म ही कलियुगमें हुआ है। मैं कहता हूँ कि जहाँ कलियुगमें बहुत दोष हैं वहीं एक बड़ा भारी गुण भी है—

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

यदि विश्वास करें तो कलियुगके समान कोई दूसरा युग नहीं है। भगवान्‌के शुद्ध दिव्य गुणोंका गान करने मात्रसे बिना ही परिश्रमके मनुष्य संसारसे पार हो जाते हैं। बहुत-से भाई कर्मोंको दोष देते हैं। कहते हैं कि हमारे तो कर्म ही अच्छे नहीं हैं, हम अपनी आत्माका सुधार कैसे कर सकते हैं? किन्तु यह बात गलत है। कर्म तो हमारे बहुत अच्छे हैं। मानसमें गोस्वामीजीने कहा है—

बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥

बड़े भाग्यसे ही मनुष्य-शरीर मिलता है। यह देवताओंको भी दुर्लभ है, इसलिये अपने कर्मपर दोष लगाना मिथ्या है। प्रारब्ध तो पूर्वके किये कर्मोंका फल है। सुख-दुःख भोगने हैं, परन्तु प्रारब्ध हमारी मुक्तिमें बाधा नहीं डालता। इस सम्बन्धमें काल एवं कर्मकी तरह ईश्वरको भी दोष दिया जाता है, पर वह भी मिथ्या और निरर्थक है।

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

दया करके भगवान् कभी मनुष्यका शरीर देते हैं। भगवान् प्रेमी हैं। वे बिना हेतुके ही कृपा करते हैं। हमें मनुष्यका शरीर दिया है। हमारे कर्मोंके भरोसे तो पता नहीं क्या होता। जिनको पशु-पक्षी बनाया है वह भी तो भटकते फिर रहे हैं। हमें भी

बना देते तो क्या होता। चौरासी लाख योनियोंमें भटकनेके बाद ही यह मनुष्य-शरीर प्राप्त होता है। भगवान्‌का जन्म दिव्य है, हमारा जन्म लौकिक है। हमारे जन्मका हेतु अपनी आत्माका कल्याण करना है, न करना गलती है। उनका जन्म संसारसे पापियोंको समाप्त करनेके लिये होता है। उन्होंने हमको उत्तम काल दिया है, उत्तम देश दिया है, उत्तम संग दिया है। यह उनकी हमारे ऊपर बड़ी भारी दया है।

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

जो मनुष्य इतनी अहैतुकी कृपा पाकर भी, सुविधा पाकर भी भवसागरसे पार उतरनेका प्रयास नहीं करता है, वह मूर्ख है, निन्दाका पात्र है। आत्माकी हत्या करनेवालोंकी जो दुर्गति होती है, वही उसकी होती है। हम सब तो मनुष्य हैं। उनका जन्म दिव्य है, जन्मका हेतु भी दिव्य है, कर्म दिव्य है और शरीर भी दिव्य है। हमारा जन्म प्राकृत है, मायिक है। पापको मिटाने व धर्मको उठानेके लिये, सत्पुरुषोंकी रक्षाके लिये एवं पापियोंको मारकर धर्मकी नींव दृढ़ करनेके लिये भगवान् जन्म लेते हैं। गीता धर्ममय है। भगवान्‌ने गीताको अर्जुनके बहाने कहकर धर्मकी स्थापना की है। भगवान् कहते हैं कि मैं जन्मता सा दीखता हूँ, इस बातको लोग नहीं जानते। जो इस बातको जान जाते हैं, उनका फिर जन्म नहीं होता। वे मुझमें लय हो जाते हैं। मैं अपनी स्वतन्त्रतासे ही प्रकट होता हूँ, परन्तु मनुष्य परतंत्रतासे जन्म लेते हैं। मैं मायाके द्वारा भूतप्राणियोंको उनके कर्मोंके अनुसार घुमाता रहता हूँ। प्राणीमात्र चौरासी लाख योनियोंमें घूमते रहते हैं।

आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी॥

चौरासी लाख योनियाँ हैं, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज, जरायुज चार प्रकारके प्राणी हैं। स्वेदज जिनकी पसीने द्वारा उत्पत्ति है, अण्डज जिनकी अण्डेके द्वारा उत्पत्ति है जैसे पक्षी आदि, उद्भिज्ज अर्थात् पृथ्वीसे उत्पन्न होनेवाली वनस्पति आदि व जरायुज अर्थात् जेरसे उत्पन्न होनेवाले मनुष्य आदि। यद्यपि यह जीव अविनाशी है, किन्तु अपने अज्ञानके कारण जन्मता, मरता और भ्रमण करता रहता है।

फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥

काल, कर्म, स्वभाव व गुणोंसे घिरा हुआ यह जीव सदा मायाके द्वारा प्रेरा हुआ फिरता रहता है। तब भगवान् कभी अहैतुकी कृपा करके मनुष्य-शरीर देते हैं।

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

अकारण ही दया एवं प्रेम करनेवाले भगवान् मनुष्यका शरीर देते हैं। इससे यह बात सिद्ध हुई कि भगवान्के अवतारकी क्रिया अलौकिक है। माया भगवान्के अधीन है। जब वे प्रकट होते हैं तो योगमायाका पर्दा डाल लेते हैं, ताकि जो भगवान्की निन्दा करनेवाले हैं, उनसे वे छिपे रहें, वे उन्हें न पहचानें। इसीलिये उनके और हमारे जन्ममें रात-दिनका अन्तर है। ज्ञाता चेतन होता है एवं ज्ञानमें आनेवाला पदार्थ जड़ होता है। जैसे मेरे पास गमछा है, मैं इसे जाननेवाला हूँ और यह ज्ञानमें आनेवाला है, इसलिये जड है। शरीरके अन्दर रहनेवाला आत्मा चैतन्य है एवं शरीर जड है। भगवान्का शरीर दिव्य एवं चैतन्य है, हमारी इन्द्रियाँ आयु, मन, बुद्धि जड़ हैं। भगवान् मायासे अतीत हैं, हम मायामें हैं। हम सत्, रज, तम तीनों गुणोंसे हैं,

भगवान् त्रिगुणातीत हैं। जो मनुष्य भी इन तीनों गुणोंसे अतीत हो जाता है वह भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है। हमारे शरीरको चीर-फाड़कर देखा जाय तो मल एवं घृणित पदार्थ भरा है। पर भगवान्‌के शरीरका धातु दिव्य चेतन है। उनके दर्शनों एवं स्पर्शसे कल्याण हो जानेमें तो आश्चर्य ही क्या है? उनकी स्मृतिसे ही कल्याण हो जाता है। भगवान् कहते हैं जो अन्त समयमें मेरा ध्यान करते हुए जाते हैं, वे मेरे ही धामको जाते हैं। जो जीव अपने अन्त समयमें जिस-जिस भावको याद करता जाता है वही योनि उसे प्राप्त होती है। इसलिये भगवान्‌का नाम भी कल्याण देनेवाला है एवं स्मृति सुखदायी है।

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥

आपके नामकी कैसी महिमा है। आपके नामसे नामजप करनेवालोंकी ही नहीं, बल्कि जप करनेवालोंकी कृपासे लाखोंको मुक्ति मिलती है। श्रीशंकरजी आपके नामके बलपर ही लाखोंको मुक्त करते हैं।

जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहि सम गति अबिनासी॥

भगवान्‌का नाम, रूप धाम, लीला सब दिव्य हैं, उनके दर्शन, वार्ता, चिन्तनसे जीवका कल्याण हो जाता है। भगवान्‌की भावनासे ही कल्याण हो जाता है। भगवान्‌के चित्रसे उसमें भावना सहित दर्शन करनेसे ही साधकका कल्याण निश्चित है, फिर उनके साक्षात् दर्शन, नामसे कल्याण हो जानेमें क्या सन्देह है। आजकल जैसे चित्र प्रचलित हैं, यद्यपि वे काल्पनिक हैं, पर इनमें ही भावना रखनेसे कल्याण हो जाता है। भगवान् अर्जुनसे कहते हैं—अर्जुन! तू मेरे स्वरूपको देखकर डर रहा है।

प्रह्लादकी ओर देख। वह नृसिंह भगवान्‌की ओर देखकर नहीं घबराया, अपितु अपने प्रभुको सामने देखकर आनन्दमग्न हो गया। नृसिंहजीके भीषण भयंकर स्वरूपको देखकर देवता भी डर गये थे, स्वयं लक्ष्मीजीकी हिम्मत भगवान्‌के पास जानेकी नहीं पड़ी। प्रह्लादजीको गोदमें लेकर भगवान् जीभसे चाटने लगे, क्योंकि प्रह्लादका भाव था कि वे साक्षात् भगवान् हैं।

अर्जुन भगवान्‌को बहुत कम जानते थे, पूरा न पहचाननेसे उन्हें मोह हुआ। गीता कह चुकनेके बाद भगवान् अर्जुनसे पूछते हैं—तुम्हारा मोह नष्ट हुआ या नहीं। अर्जुन कहता है कि मेरा मोह अब आपकी कृपासे नष्ट हो गया है। भगवान् कहते हैं कि मैं अजन्मा अविनाशी हूँ, जन्मने और मरनेवाला नहीं। मेरा शरीर मायिक नहीं है, मेरा मेरी स्वतंत्रतासे प्रादुर्भाव होता है। जैसे भगवान् कितने ही भक्तोंको दर्शन देनेके लिये प्रकट होते हैं एवं फिर अन्तर्धान हो जाते हैं। इसी प्रकार जब आवश्यकता पड़ती है वे प्रकट हो जाते हैं। अर्जुनको भी भगवान्‌ने गीतामें विराट्‌रूप दिखलाया था एवं ब्रह्माजीद्वारा बछड़ोंके हरे जानेपर स्वयं उनके रूपमें प्रकट हो गये। क्षणमें अनेक रूपोंमें प्रकट हो गये तथा क्षणमें विलीन हो गये। भगवान् प्रकट और अन्तर्धान ही होते हैं, यह उनके जन्मकी अलौकिकता है। जो मनुष्य यह बात जान लेते हैं वे फिर भगवान्‌से बिना मिले नहीं रहते। उन्हें फिर भगवान्‌से एक क्षणका भी वियोग सहन नहीं होता।

भगवान् आते हैं तो प्रकृतिको अपने वशमें करके आते हैं। इन श्लोकोंमें भगवान्‌के जन्मकी अलौकिकता दिखलायी है। हमारे जन्मकी क्रियासे भगवान्‌के जन्मकी क्रिया अत्यन्त विलक्षण है।

यहाँ शंका होती है क्या कोई जन्म, कर्मकी दिव्यताको

जाननेसे मुक्त हुआ है ? समझमें तो आपके भी आयी है। आपका भी कल्याण होना चाहिये, परन्तु यहाँ समझमें आ जानेकी क्या कसौटी है। यहाँ एक श्लोक है—

वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥

(गीता २। ५६)

वीतराग हो जाना ही कसौटी है। संसारमें आसक्तिका अभाव होना चाहिये। यदि संसारमें आपकी आसक्ति है तो समझिये आपकी समझमें कुछ नहीं आया। भगवान्‌में प्रीति हो जानेके बाद क्रोध, भयकी समाप्ति हो जाती है। राग, भय होनेसे ही क्रोधकी उत्पत्ति है। राग, भयके चले जानेसे फिर क्रोध नहीं रहता। क्रोध मनकी इच्छामें बाधा पड़नेसे होता है। जब भगवान्‌में प्रीति हो जाती है, तब उनकी दिव्य बातें समझमें आ जाती हैं। उनके तत्त्वकी बातोंको समझकर भी प्रेम नहीं होता तो कब होगा ? ऐसे भगवान् जो संसारका कल्याण करनेके लिये आते हैं, ऐसे प्रभुको छोड़कर जो संसारका ध्यान करते हैं, वे धिक्कारनेके योग्य हैं। जो भगवान्‌को ही सर्वश्रेष्ठ समझता है उसीको उनका यथार्थ ज्ञान हो जाता है। भगवान् कहते हैं वह मेरा ही पूजन करता है, इसलिये मुझे जो तत्त्वसे जान जाता है वही मुझे प्राप्त हो जाता है। मेरे कर्मको समझनेसे ही मुझे प्राप्त हो जाता है।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

(गीता ४। ११)

जो मुझे जिस प्रकारसे भजते हैं मैं भी उन्हें उसी प्रकारसे भजता हूँ। जो मेरे प्रति आत्मसमर्पण कर देता है, मैं भी उसे आत्मसमर्पण कर देता हूँ। कैसे सुन्दर शब्द हैं। कहाँ तो असंख्य ब्रह्माण्डके मालिक और कहाँ हम। प्रभु कहते हैं कि जिन्होंने

मुझे अपना हृदय दे रखा है उसका मूल्य है मेरा हृदय। प्रभुका कितना प्रेम है, कितनी दया है, कितनी उदारता है। प्रभु कहते हैं ***बेचे तो बिक जाऊँ नरसी म्हारो सिर धणी।*** कितने सुन्दर भाव हैं। हमारा भी व्यवहार ऐसा ही होना चाहिये। भगवान्से पूछनेपर कि ऐसा व्यवहार आप क्यों करते हैं? उत्तर मिलता है लोगोंको शिक्षा देनेके लिये। मैं जैसा करूँ वैसा तुम करो। मेरे तत्त्वको समझना यही है कि समझनेवाला भी मेरी भाँति ही व्यवहार करने लग जाय। भगवान्से पूछते हैं कि जब आपके दिव्य कर्मोंको समझनेवाला आपको ही प्राप्त हो जाता है तो फिर लोग देवताओंको क्यों भजते हैं। इतने महत्त्वकी चीजको क्यों छोड़ देते हैं? प्रभु कहते हैं कि देवता उनकी मनोकामना शीघ्र पूर्ण कर देते हैं। चाहे उससे मनुष्यका लाभ हो अथवा हानि। देवताओंको अपने स्वार्थसे तात्पर्य होता है।

मनुष्य एक प्रकारसे देवताओंके पशु हैं। वे उससे काम लेते हैं और उसे खानेको देते हैं। चूँकि उन्हें काम लेना है इसलिये खानेको चारा देते रहते हैं। इसलिये हमारा उचित-अनुचितका विचार किये बिना इच्छापूर्ति कर देते हैं, परन्तु मैं (भगवान्) ऐसा ही किया करता हूँ जिससे उनका हित हो, क्योंकि बच्चा जब माँसे विष माँगता है तो क्या माँ देती है? नहीं, इसी प्रकार मैं भी नहीं देता। देवता तो इसलिये दे देते हैं—

सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥

परन्तु भगवान् तो हेतुरहित प्रीति करते हैं। भगवान् शंकर कहते हैं—

उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥

शंका होती है क्या गुरु भी नहीं? करोड़ों मनुष्य हैं, करोड़ों

गुरु हैं। सब स्वार्थमें रत हैं, केवल भगवान् ही नि:स्वार्थ प्रेम करते हैं। मुनि भी कोई नि:स्वार्थ नहीं है, क्योंकि जो हैं भी, वे भगवान्‌को जानते हैं इसलिये उन्हींमें शामिल हैं।

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥

प्रभु कहते हैं—मैं कोई चीज तभी देता हूँ जब उसका उसमें हित देखता हूँ। देवताओंका तरीका तो उस तरहका है जैसे एक मालिक अपने कोयलेकी खानमें खुदाई करनेवाले मजदूरद्वारा एक आना पैसा शराबके लिये अधिक माँगे जानेपर उसे दे देता है, क्योंकि उसे तो उससे दूसरे दिन एक रुपयेका काम लेना है। नारदजीने अपनी मनचाही मुखाकृति न पानेपर भगवान्‌से काफी भला-बुरा कहा, बच्चा भी अपनी चीज न मिलनेपर माँसे लड़ने लगता है, नारदजीने भी ऐसा किया, किन्तु भगवान्‌ने बुरा नहीं माना, क्योंकि वह तो सच्चे हितैषी हैं, नि:स्वार्थ प्रेम करनेवाले हैं।

भगवान् कहते हैं—चार प्रकारकी जातियोंके जीवोंकी गुण कर्मोंके अनुसार ही मैंने रचना की है, मैंने आसक्तिसे ऐसा नहीं किया। उनके गुण कर्मसे ही ऐसा होता है। मैं तो कल्पनासे कर्ता समझ लिया जाता हूँ, किन्तु मैं कर्ता होता हुआ भी अकर्ता हूँ। मैं कर्मोंमें लिपायमान नहीं होता। इतनी बड़ी सृष्टिकी रचना करता हुआ भी अकर्ता ही हूँ। ऐसा पुरुष किसीको मारकर भी नहीं मारता। जीवोंके कर्मोंके अनुसार ही उनकी रचना होती है।

कर्मके फलोंकी मुझे इच्छा नहीं है, इसलिये कर्म मुझे नहीं बाँधते। तू भी भगवान्‌की तरह कर्म कर, पर उनमें लिपायमान मत हो, तभी हम भगवान्‌को प्राप्त कर सकते हैं। आसक्ति, फलकी इच्छासे रहित होकर कार्य करनेसे उनके समान ही समझे जायँगे। जो मनुष्य भगवान्‌के जन्म-कर्मकी दिव्यता जान जाता

है वह तत्त्वसे उन्हें समझ जाता है, तब उसकी बुद्धि स्वाभाविक ही उनमें रम जाती है और ऐसा करनेसे हम मुक्त हो जाते हैं। जब भगवान् ऐसे दिव्य हैं तो हमारा मन यह जानकर उनमें ही लग जायगा और हम उपासना करेंगे। हममें ज्ञान पैदा होगा और हम उन्हें प्राप्त कर लेंगे।

मेरे जन्म-कर्मको जो तत्त्वसे जान जाता है वह मुझे ही प्राप्त हो जाता है। मैं अज और अविनाशी हूँ। मूर्खोंका समूह मुझे नहीं जानता। मैं जब जन्म लेता हूँ अपने ऊपर मायाका पर्दा डाल लेता हूँ, इसलिये मूढ़ मुझे नहीं देख पाते। हमें भगवान्‌का वास्तविक स्वरूप देखनेमें नहीं आता, इसीलिये राम, कृष्णके बाल, वृद्ध एवं युवा होनेका भान होता है। मैं तो मायाका खोल ओढ़कर आता हूँ। अपने भक्तोंसे मैं मायाका पर्दा हटा देता हूँ। मैं भूतोंका महान् ईश्वर हूँ। यह जो मेरा परम भाव है, मेरे इस प्रकारके स्वरूपको नहीं जाननेके कारण ही, मायाके कारण ही मैं जन्मता-मरता, घटता-बढ़ता दीखता हूँ।

मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्॥

देखनेमात्रसे ही कल्याणका प्रश्न नहीं उठता। यों तो मुझे कृष्णरूपमें दुर्योधनादिने भी देखा, किन्तु जो मुझे तत्त्वसे समझ जाता है उसीका कल्याण होता है, वह तो मेरा मायासे आवृत रूप है। क्योंकि वास्तविक रूप न कभी घटता है, न बढ़ता है, न जन्मता है, न मरता है। मूर्ख लोगोंके लिये मेरा रूप योगमायासे आवृत दीखता है।

श्रीमन्नारायण! नारायण!! नारायण!!!

❑❑

भगवान्‌के ध्यानसे आनन्दकी प्राप्ति

ध्यानके लिये आनन्दसे शान्तिसे पालथी मारकर बैठ जाना चाहिये। भगवान्‌के ध्यानका विषय बहुत ही रहस्यका विषय है। श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम थे, उन्होंने संसारके कल्याणार्थ अवतार धारण किया था। गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

(गीता ४। ८)

त्रेतामें रामावतार रावण, कुम्भकर्ण, त्रिशरादिका वध करने एवं धर्मकी स्थापनाके लिये हुआ था। उन्होंने अपने व्याख्यान एवं आचरणोंद्वारा भी धर्मकी स्थापना की। भगवान्‌की लीला जैसे रामलीला, कृष्णलीला आदि कल्याण करनेवाली हैं।

प्रभु श्रीरामका चलना, उठना, बैठना, बोलना, देखना आदि सब आनन्दमय है। श्रद्धा और प्रेम रखनेवालोंको ही आनन्द प्राप्त होता है। जो श्रद्धा नहीं रखते उन्हें कुछ नहीं मिलता। उस समयकी भगवान्‌की लीलाओंको, उनके द्वारा किये गये नाना प्रकारके आचरणोंको ध्यान करके गद्‌गद हो जाना चाहिये, अश्रुपात होते रहना चाहिये। उनकी लीलाओंको समझनेवालोंको विशेष आनन्द आता है। यदि हमारा हृदय थोड़ा भी शुद्ध हो तो भगवान्‌के चरित्र सुनने, कहने एवं याद करनेमें बड़ा आनन्द आता है। फिर जिनका हृदय बिलकुल ही शुद्ध हो, उनकी तो बात ही क्या कही जाय।

भगवान्‌का ध्यान करनेके पूर्व यह बात उसी प्रकार समझ लेनी चाहिये कि उनके ध्यानमें आनन्दकी बाढ़ आ जाती है,

अश्रुपात होने लग जाता है, रोमांच हो जाता है। भगवान् सारे संसारमें निराकार रूपसे व्याप्त हैं, परन्तु जब निर्गुण-निराकारका प्रादुर्भाव होता है, तब सर्वत्र आनन्द छा जाता है, चेतना फैल जाती है। हमलोगोंको ऐसी भावना करनी चाहिये, विश्वास होना चाहिये। यदि हमारी शुद्ध भावना हो जाय तो भगवान् ध्यानमें ही नहीं, अपितु प्रत्यक्षमें भी दर्शन देने आ सकते हैं; परन्तु हमें प्रतीक्षा करनी चाहिये, उनकी बाट जोहते रहना चाहिये कि प्रभु अब आये, अब आ रहे हैं, अवश्य आयेंगे। शबरी भगवान्की बहुत दिनोंसे प्रतीक्षा करती थी, किन्तु उसके विश्वास व निश्चयमें कमी नहीं आयी, इसलिये भगवान्ने उसे उसकी कुटीपर जाकर दर्शन दिये। रुक्मिणी भी भगवान्की हृदयसे प्रतीक्षा कर रही थी तो भगवान् वहाँ भी पहुँचे। श्रीभरतजी व्याकुल हृदयसे भगवान्की प्रतीक्षा कर रहे थे, इसलिये भगवान् बिना एक दिनकी भी देर लगाये वहाँ पहुँच गये। हमलोगोंको कीर्तन एक स्वर, ताल, ध्वनिसे मिलकर करना चाहिये, यह भगवान्का आवाहन है। जैसे हम किसीको आवाज देकर बुलाते हैं, हमें इसका लाभ अच्छी प्रकार विशेष रूपसे उठाना चाहिये। प्रेम और श्रद्धासे पुकारना चाहिये, समझना और विश्वास करना चाहिये कि प्रभु अवश्य आयेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि भगवान् निश्चय ही आयेंगे और जब आयेंगे तो दर्शन भी निश्चय होगा ही। ध्यानमें उन्हें याद करनेपर वे ध्यानमें भी दर्शन देते हैं।

यदि भीतरकी आत्मा यह कहती है और विश्वास है तो निश्चय ही प्रभु उसे पूरा करते हैं। नरसीजीको विश्वास था कि भगवान् आयेंगे। निश्चय पर तो भगवान् अवश्य पहुँचते हैं। श्रद्धा और प्रेमवाला कभी भी वंचित नहीं रहता, इसलिये श्रद्धा और

प्रेमको अपने अन्दर बढ़ाना चाहिये, दृढ़ता रखनी चाहिये। समझना चाहिये कि भगवान् अवश्य दर्शन देंगे, क्योंकि आजतक प्रेमसे बहुतोंने उनको प्रकट कर लिया। वे तो केवल प्रेमके भूखे हैं, प्रेमकी रस्सीमें बँध जानेपर फिर दूर नहीं हैं। श्रीगोस्वामीजीने मानसमें कहा है—

रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जान लेउ जो जाननिहारा॥

श्रीभगवान्‌को केवल प्रेम प्यारा है। जो भी इसे समझना चाहे समझ ले। प्रेम करके देखिये, भगवान्‌के लिये तड़पिये, फिर प्रभु तुरन्त प्रकट होंगे। रामचरितमानसमें भगवान् शंकर कहते हैं—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

भगवान् सब जगह समान रूपसे व्याप्त हैं, जब प्रेमसे उनका आवाहन किया जाता है, वे तुरन्त प्रकट हो जाते हैं। श्रीशंकरजी तथा श्रीरामजी एक दूसरेके बड़े भक्त हैं। हमलोग भी यदि चाहें तो भगवान्‌की भक्तिसे बहुत उच्चकोटिके बन सकते हैं, श्रीभगवान्‌की प्रतिज्ञा है—जो मेरे भक्त मेरी चरणरजके लिये मेरे पीछे लगे रहते हैं, मैं भी उनकी चरणधूलिके लिये उनके पीछे-पीछे फिरता रहता हूँ। गीतामें कहा है—**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्**। श्रीसीताजी जब अशोकवाटिकामें भगवान्‌से विरह हो जानेपर विलाप करती हैं तो भगवान् भी उनके लिये खोजते और विलाप करते हैं। श्रीभरतजी जब उनकी याद करते हैं—

रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा॥

तब भगवान् भी विभीषणसे कहते हैं कि मुझे एक-एक पल भारी हो रहा है, भाई भरत मेरी यादमें विकल है। भगवान्‌की स्मृतिमें, विरहकी तड़पनमें भी एक प्रकारका असीम आनन्द है।

बहुतसे भाई भगवान्‌के ध्यानमें दर्शन करते हैं, बीचमें प्रकट होकर दर्शन देना तो उनकी इच्छापर है पर ध्यान तो हमारे हाथकी चीज है। ध्यानमें उनके दर्शन करना तो हमारी इच्छापर है, इसमें उनका कोई निहोरा नहीं। ध्यान तो हमें करना ही है। संत कवि सूरदासजीमें पूर्व जन्मके अच्छे संस्कारोंसे इस जन्ममें अच्छी भक्ति थी। एक स्त्रीपर उनकी आसक्ति हो गयी थी। अपनी आँखोंमें पाप दृष्टि आ जानेसे उन्होंने अपनी आँखें फोड़ लीं, किन्तु आपको ऐसा नहीं करना चाहिये कि ऐसी बात होनेपर आप भी ऐसा ही कर बैठें, क्योंकि सूरदासजी तो इसके पात्र थे, हम इसके पात्र नहीं हैं। हमें तो ऐसी पाप बुद्धि होनेपर आँखें नीची कर लेनी चाहिये या बन्द कर लेनी चाहिये या एक समयका उपवास कर लेना चाहिये। उपवाससे पाप जल जाता है, अन्नसे विकार पैदा होते हैं। उपवाससे मन-इन्द्रियाँ शान्त एवं शुद्ध हो जाती हैं। एक बार वे कहीं जा रहे थे, रास्तेमें सामने गड्ढा आ गया। अंधे होनेसे उन्हें कुछ पता न था। भगवान्‌ने सोचा मुझे इसको बचाना चाहिये, यदि मैं ही अपने बनाये नियमोंका पालन नहीं करूँगा, अपने ऊपर ही आश्रित रहनेवालोंकी रक्षा नहीं करूँगा तो कर्तव्यच्युत होऊँगा। बालकका रूप धारण करके उन्होंने सूरदासजीसे कहा—बाबा! आगे गड्ढा है, मैं तुम्हारी अंगुली पकड़कर तुम्हें पार कर देता हूँ। भगवान्‌के हाथसे स्पर्श होते ही उनके शरीरमें प्रसन्नता व्याप्त हो गयी। सूरदासजी सारा भेद जान गये। भगवान्‌को पहचान लिया कि ऐसा दिव्य शरीर भगवान्‌के सिवाय किसका हो सकता है? और प्रभुकी कलाईको पकड़ लिया। प्रभु तो अन्तर्यामी हैं ही, उन्होंने हाथ छुड़ाया और भाग लिये। सूरदासजी कहने लगे—

बाँह छुड़ाये जात हो निबल जान के मोहि।
हिरदेसे जब जाहुगे पुरुष बदूँगो तोहि॥

ध्यान करना तो सूरदासजीके हाथमें है भगवान्‌के हाथमें नहीं। भगवान् ध्यानमेंसे कैसे भाग सकते हैं ? इसलिये जो मनुष्य ध्यानमें भगवान्‌को बैठा लेता है, भगवान् उससे नहीं भागते। यदि निश्चय हो जाय तो भगवान् दर्शन दे सकते हैं और आवाहन करनेसे भगवान् प्रकट हो जाते हैं। उनका प्रादुर्भाव निराकार रूपमें होता है, विज्ञानानन्दघनमें उनका प्रादुर्भाव होता है। सबमें सर्वत्र आनन्द भर जाता है, ज्ञानकी जागृति दीखती है। चेतनता भगवान्‌का स्वरूप है, गुणोंकी बाढ़ आ जाती है। सारा विश्व एक प्रकाशसे भर जाता है। उस प्रकाशका एक पुंजीभूत बन जाता है और उसमें भगवान्‌के दर्शन होते हैं। उनका स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। भगवान्‌के दर्शन इस प्रकार होते हैं जैसे शरद् पूर्णिमाके चन्द्रमाके चारों ओर चाँदनी छायी रहती है और उसमें चन्द्रमा शोभायमान होता है, उसी प्रकार ध्यान करनेसे भगवान् मूर्तिमान् होकर दर्शन देते हैं। सब जगह आनन्द परिपूर्ण हो गया है। समस्त भूत-प्राणियोंके बाहर-भीतर सर्वत्र आनन्द व्याप्त है। भगवान् सब जगह ज्ञानरूपसे विराजमान रहते हैं। जहाँ भगवान्‌की चर्चा होती है, उनके गुणानुवाद होते हैं, वहाँ स्वाभाविक ही शान्ति विराजमान रहती है, माया वहाँ टिक ही कैसे सकती है, वह तो भाग जाती है, जैसे कागभुशुण्डिजीके आश्रमके चारों ओर चार-चार कोसतक माया नहीं व्यापती थी। जहाँ सदैव ही सत्संग एवं भगवान्‌की चर्चा होती रहती है वहाँ भगवान्‌के प्रकट होनेसे मायारूपी अज्ञान इस तरह भाग जाता है जैसे सूर्यके प्रकाशसे अँधेरा दूर हो जाता है। आप ध्यान करिये, अपने मन, बुद्धिकी ओर देखिये, सब जगह

आनन्द और चेतनता व्याप्त हो गयी है। परमात्माके सिवाय दूसरा संकल्प ही पैदा नहीं होता। विश्वास करना चाहिये कि आनन्द बढ़ रहा है, हमारे मन, बुद्धि, इन्द्रियों एवं एक-एक अणुमें प्रत्यक्ष होता जा रहा है। नेत्र बन्द करके देखिये, शरद् पूर्णिमाके चन्द्रमाकी तरह शान्तिमय शीतल प्रकाश दीखेगा। हृदयके अन्दर प्रसन्नता हो। सारे शरीरमें मालूम पड़े जैसे प्रेमका, आनन्दका समुद्र ही उमड़ पड़ा है, आनन्दकी बाढ़ आ गयी है। इसी प्रकारका आनन्द स्वरूप बाहर-भीतर व्याप्त है। परमात्मा आँख बन्द करनेपर प्रकाश रूपसे प्रकट होते हैं। हमें भगवान्‌के आनेका विश्वास करना चाहिये। यह प्रकाश निराकार आनन्दमय होता है। इसी प्रकाशका पुंजीभूत होकर भगवान्‌का रूप दृष्टिगोचर होता है। हमें उत्तम भावोंद्वारा विनम्र शब्दोंसे भगवान्‌की स्तुति करनी चाहिये—

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः॥

हे प्रभु! हे नाथ! हे देव! हे नारायण! आप क्यों विलम्ब कर रहे हैं? ध्यानावस्थामें तो आपका निहोरा ही क्या है? हम तो आपसे हमारे बीचमें प्रकट होकर दर्शन देनेकी माँग करते हैं पाँच-दस आदमी नहीं सौ-दो-सौ आदमियोंके बीच प्रगट होकर दर्शन दें, दस-पाँचको तो दुनिया झूठा ही कह देगी।

एक बात मैं पूँछउँ तोही। कारण कवन बिसारेउ मोही॥

हे नाथ! आपने मुझे क्यों बिसार दिया है? हे प्रभु! आप ऐसा करेंगे तो कैसे काम चलेगा। हे स्वामी! आप-जैसे तो आप ही हैं, दूसरा कौन है, मैं आपको छोड़कर किसके पास जाऊँ।

हे नारायण! आपके जैसे तो आप हैं पर हमारे जैसे तो बहुत हैं स्वामी।

मो से दास बहुत जग माहीं। तोसे नाथ जगत कोउ नाहीं॥

हे प्रभु! आप राम रूपसे प्रकट हो जाइये, यह हमारी प्रार्थना है। हे स्वामी! साक्षात् प्रकट होकर दर्शन दें तो बात ही क्या है? श्रद्धा और प्रेम तो अपने घरकी चीज है, इसका अपने अन्दर खूब पोषण करना चाहिये। इसे खूब बढ़ाकर हृदय खोलकर भगवान्‌का आवाहन करना चाहिये।

हे प्रभु! न मेरेमें योग है, न मुझमें ज्ञान है, न भक्ति है, न वैराग्य है। मैं तो सब प्रकारसे हीन हूँ। मेरे पास ऐसी कोई चीज नहीं जिसके बलपर आपसे प्रकट होनेका आग्रह करूँ। हे प्रभु! मैं तो आपपर पूर्णरूपेण निर्भर हूँ। मेरे बल तो आप ही हैं। हे स्वामी! मेरे दोषोंकी ओर न देखें। मैं आपका दास हूँ।

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥

हे नाथ! आप तो अपने दासोंके दोषोंकी ओर कभी नहीं देखते। आपका स्वभाव अति कोमल है। नाथ! आप दीनबन्धु हैं, हम दीन हैं। हे प्रभु! हमारे अन्दर ऐसी विरहकी व्याकुलता भी नहीं है कि आपको आना पड़े, परन्तु हम आपके ही बलपर, आपके मृदुल स्वभावके बलपर ही कह सकते हैं कि आपको आना पड़ेगा और अवश्य ही आना पड़ेगा। नेत्र बन्द करके देखिये तो सही, कैसा आनन्द है, कैसा प्रकाश है। हृदयसे प्रत्यक्षकी तरह दीखता है, कैसा आनन्द, शान्ति और सुख व्याप्त है।

आनन्द-ही-आनन्द है, पूर्णानन्द, घनानन्द, अपारानन्द, अचलानन्द, भगवान्‌को ज्ञानके नेत्रोंसे देखना चाहिये, इन नेत्रोंसे नहीं। देखिये भगवान् दूर आकाशमें स्थित हैं, उनका सुन्दर

कमलके समान मुख खिल रहा है, वे अति प्रसन्न हैं।

नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्हीं कृपा जानि जन दीना॥

हे प्रभु! मैं सकल साधनोंसे हीन हूँ, हे स्वामी! मुझे अपना दीन जन समझकर शरणमें ले लें, कृपाकी वृष्टि कर दें। भगवान्‌का स्वरूप आनन्द देनेवाला है। सारा आकाश प्रकाशसे व्याप्त है। जैसे शरद् पूर्णिमाके चन्द्रमाकी चाँदनी सारे संसारमें फैल जाती है, इसी प्रकार प्रभुका रूप प्रकट होता है। उनका ऐसा ही कोमल और सुन्दर शरीर है। जैसे श्याम रंगके बीचमें नवीन दूर्वादलके अग्रभागके समान हरियाली भी हो, उनके चरण गुलाबीसे हैं, भगवान्‌के तलवोंमें ऊर्ध्व रेखा है, ध्वजा है, पताका है, अँगुलियोंपर शंख, चक्र, गदा, पद्मके चिह्न हैं।

भगवान्‌के शरीरका स्पर्श करनेसे पूरा शरीर रोमांचित हो गया है। उनके चरणोंकी अँगुलियोंमें नाखून बड़े ही शोभा पा रहे हैं, जैसे चन्द्रमाके टुकड़े लगा दिये हों। भगवान्‌का स्वरूप इस समय ऐसा है जैसा राजा जनकके यहाँ था। सोलह वर्षके सुन्दर राजकुमार हैं। भगवान्‌के चरणोंमें नूपुर हैं, कटि प्रदेशपर करधनी एवं पीताम्बर शोभायमान हैं। पीताम्बर बिजलीकी-सी चमक दे रहा है। महीन होनेके कारण उसमेंसे सुन्दर श्याम शरीर बादलकी तरह दिखायी दे रहा है। भगवान्‌के पेटपर त्रिवली यानी तीन रेखाएँ शोभायमान हैं। उनके हृदयपर वनमाला सुशोभित है, जो घुटनोंतक लटक रही है। दूसरी पुष्पमाला उनके गलेसे नाभितक पड़ी है। गलेमें गजमुक्ता एवं नाना प्रकारके आकर्षक रत्नोंकी मालाएँ शोभायमान हैं। उनकी दाहिनी भुजामें बाण शोभित हैं तथा बायीं भुजामें धनुषकी डोरी लिये हुए हैं। पीठपर तरकस सुशोभित है। हाथीकी सूँडकी तरह उनकी भुजा बड़ी ही

बलिष्ठ है। भुजाओंमें बाजूबन्द पहने हुए हैं। अँगुलियोंमें हीरेकी चौंधिया देनेवाली अँगूठी है। भगवान्की ग्रीवा शंखके समान है। ठोड़ी बड़ी ही लावण्यमयी है। उनके होठ विम्बफलके सदृश हैं, जादूका काम करते हैं। उनके कंधे सिंहके समान हैं। चन्द्रमाकी चाँदनीको भी लज्जित करनेवाला उनका मधुर और जनसुखदायक मन्द-मन्द हास्य है। हँसते समय दाँतोंकी जो पंक्ति दीखती है, वह मोतियों-जैसी चित्ताकर्षक है। भगवान्की नासिका सुन्दर है। आँखें गुलाबके पुष्पके समान हैं। भौंहें कमान-जैसी हैं। ललाटपर तिलक बड़ा ही शोभा पा रहा है। भगवान्के मस्तककी अलकावली ऐसी सुन्दर है जैसे भौंरोंकी पंक्तियाँ हों। मस्तकपर सुन्दर रत्नजटित मुकुट शोभायमान है। कानोंमें मकराकृत कुण्डल पहने हैं, उनकी झलक कपोलोंपर पड़कर बड़ी ही मोहक हो रही है। भगवान्के शरीरसे सुगन्ध उठ रही है। शान्ति और आनन्द चारों ओर छा रहा है। वे अपने नेत्रोंमें दयाभाव भरकर हमारे ऊपर अमृत वर्षा कर रहे हैं। वहाँ आनन्द है, अत: काम, क्रोध, मोह, लोभकी पहुँच हो ही कैसे सकती है। उनकी वाणी बड़ी मधुर और गम्भीर है। वे सुन्दर उपदेश दे रहे हैं। वे सौम्यभावसे हमारी ओर देख रहे हैं। भगवान् दया, समता एवं क्षमासे देखते हैं, ताकि हमारे अन्दर भी वही भाव उदय हो जायँ और दया, क्षमा, समताको हम ग्रहण कर लें। प्रेमकी वर्षा हो रही है।

हमारे चारों ओर प्रेम व्याप्त है। हम भगवान्के सुन्दर स्वरूपको नेत्रोंके द्वारा पी जाना चाहते हैं। भगवान्के नेत्र गुलाबके पुष्पकी तरह हैं। हम उनकी सुन्दरतासे खिंच रहे हैं। उनकी रूपमाधुरीके सामने करोड़ों कामदेव भी लज्जित हो जाते हैं। जिस प्रकार चन्द्रमाको चकोर पक्षी एकटक देखता रहता है उसी प्रकार

हमारी आँखें भगवान्‌के मुखकमलका भौंरा बनकर पान कर रही हैं। हमारे अन्दर आनन्दकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है।

हम भगवान्‌को सूक्ष्म इन्द्रियोंसे देख रहे हैं, स्थूलसे नहीं। मानसिक भावसे देखते हैं, शारीरिक नहीं। उनके रूपको देखकर मनुष्यकी तो बात ही क्या है, पशु-पक्षी भी मोहित हो जाते हैं।

हे प्रभु! क्या आपका हमें साक्षात् दर्शन होगा? हमारे आचरण ऐसे नहीं हैं, पर आप बड़े दयालु हैं, अहैतुक कृपा करनेवाले हैं। आपके प्रभावके सामने माया और भय कुछ नहीं है। यदि आपकी कृपा हमपर हो जाय तो हम भी मुक्त हो जायँ। आपका निराकार रूप सब जगह व्याप्त है। आप समानभावसे सब जगह विराजमान हैं, इसलिये हमको ध्यानमें सच्चिदानन्द रूपसे आपके दर्शन हो रहे हैं। हमें बारम्बार प्रार्थना करनी चाहिये कि हमें जैसे आपके दर्शन ध्यानमें प्राप्त हो रहे हैं, उसी प्रकार साक्षात् दर्शन भी हों। हम आपसे चाहते हैं कि आपसे हमारा विशुद्ध एवं अनन्य प्रेम हो। जिस प्रकार आप आकाशमें सुन्दर रूपसे दर्शन दे रहे हैं, उसी प्रकार आप हमारे हृदयमें भी दर्शन दीजिये।

आप ही द्वापरमें कृष्णरूपसे आये, त्रेतामें रामरूपसे अवतीर्ण हुए। आप ही संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाले हैं, आपके संकल्पसे ही संसार है और संकल्परहित हो जानेपर संसार भी समाप्त हो जाता है। भक्त मण्डलाकार खड़े होकर भगवान्‌के दर्शन कर रहे हैं, परिक्रमा कर रहे हैं, अर्जुनकी भाँति भगवान्‌की स्तुति कर रहे हैं। उसीमें सूक्ष्म रूपसे हम भी उपस्थित हैं। मनुष्योंमें ध्रुवजी खड़े हैं, पक्षियोंमें गरुड और कागभुशुण्डि हैं, वानरोंमें सुग्रीव, हनुमान्, रीछोंमें जामवंत, राक्षसोंमें विभीषण, दानवोंमें प्रह्लाद एवं बलि खड़े हैं, आपका

कीर्तन कर रहे हैं, आपके दर्शनसे वाणी गद्‌गद होकर साधक अपने आपको भूल जाता है। साक्षात् दर्शनसे शरीरमें रोमांच, अश्रुपात होने लगता है। मनमें कोई भी कामना नहीं रहती, सब संकल्प समाप्त हो जाते हैं। संशय और पापोंका नाश हो जाता है। नेत्रोंसे उनकी रूपमाधुरीका पान होता रहता है। बाहर-भीतर सब जगह भगवान्‌का स्वरूप दीखता है। भगवान्‌के हाथसे मरनेवालोंकी एवं ध्यान करनेवालोंकी मुक्ति हो जाती है। जैसे भगवान् राम द्वारा मारे गये खर-दूषण आदि चौदह हजार राक्षसोंका ध्यान भगवान्‌में केन्द्रित था और वे मारे भी उन्हींके हाथसे गये इसलिये उन सबके दिव्य रूप हो गये। वे मुक्त हो गये। भगवान्‌ने कहा है—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

(गीता ८। ५)

जो पुरुष अन्तकालमें भी मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीरको त्याग कर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको प्राप्त होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

इसके बाद हमें भगवान्‌की मानसिक पूजा करनी चाहिये। भगवान्‌को भिन्न-भिन्न प्रकारके सुगन्धित लेपोंद्वारा उबटन लगाकर, नहलाकर, सुन्दर वस्त्र धारण कराने चाहिये। उन्हें सुन्दर सिंहासनपर विराजमान करके नाना प्रकारके मधुर व्यंजनोंके भोगोंसे तृप्त करें, फिर पान, सुपारी, इलायची, लौंग आदि दें, उनकी भावसहित आरती करें, फिर दक्षिणामें अपने आपको ही अर्पण कर दें; क्योंकि बिना दक्षिणाके तथा श्रद्धारहित किया हुआ यज्ञ तामसी होता है।

फिर प्रार्थना करें जैसे आप ध्यानमें दर्शन दे रहे हैं, उसी प्रकार प्रत्यक्षमें भी दीजिये। हे प्रभु! हम आपकी क्या महिमा गायें। आपके गुणोंका वर्णन करनेमें शेष व शारदा भी समर्थ नहीं हैं। हे प्रभो! आप क्या करनेसे दर्शन देंगे। हे स्वामी! आप आकाशवाणीद्वारा ही हमें उपाय बता दें। जो भी भगवान्‌की लीलाका तत्त्व-रहस्य समझ जाता है, वह धन्य है, उसकी जननी धन्य है।

भगवान्‌के गुण, लीलाका तत्त्व-रहस्य क्या है? उनकी किसी भी लीलाको ले लीजिये। परशुरामजीके संवादको ही लीजिये। परशुराम अतिशय क्रोधमें पूछते हैं कि यह महादेवजीका धनुष किसने तोड़ा है? तब भगवान् बड़े ही रहस्यभरे नम्र शब्दोंमें अपने आपको परशुरामजीके सामने प्रकट करते हैं, परन्तु परशुरामजी नहीं समझ सके—

नाथ संभुधनु भंजनिहारा। होइहि केउ एक दास तुम्हारा॥

ऊपर भगवान् संकेत करते हैं कि धनुषको तोड़नेवाला तो कोई एक ही है अर्थात् उस-जैसा वही है, अर्थात् स्वयं भगवान् वह भी तुम्हारा दास, भृगुने श्रीविष्णुके हृदयमें लात मारी थी। फिर और आगे कहते हैं—

राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तोहारा॥

अर्थात् यह कि आप तो परशुवाले राम हो, लेकिन मैं तो मात्र राम हूँ। वही राम जो हर जगह रमा हुआ है, परन्तु परशुरामजीने उनकी श्रीविष्णुद्वारा दिये हुए धनुषसे परीक्षा ली और उनके रहस्यको पहचानकर प्रेममें मगन हो गये एवं स्तुति करने लगे।

हमें भगवान्‌के चरित्रोंका गान करना चाहिये, उनसे शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये, उनके अनुसार अपना जीवन बनाना

चाहिये। हर समय अपने सम्मुख यह आदर्श रखें कि मेरी जगह यदि राम होते तो क्या करते? भगवान् रामके कथनोंमें भी आदर्श है। हमें उनसे भी शिक्षा लेनी चाहिये। भगवान् राम एक बार अपनी सारी प्रजाको बुलाकर सभा करते हैं एवं उनके भलेके लिये कितने विनयपूर्ण शब्दोंमें निवेदन करते हैं—

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउँ न कछु ममता उर आनी॥
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई॥
जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई॥

भगवान् राम स्वयं भगवान् होकर भी अपनी प्रजासे कैसे विनयपूर्ण शब्दोंमें प्रार्थना करते हैं। हमें भी चाहिये कि सदैव व्याख्यानमें अपने-आपको छोटा बनाकर विनयपूर्वक नम्र शब्दोंमें ही अपने विचार प्रगट करें एवं कहें कि मैं आपका बच्चा हूँ, मैंने जो बातें कही हैं, उनमेंसे आप जो उचित समझें मानें, यदि अनुचित हो तो मुझे रोकें। जिस प्रकार भगवान्‌ने लंकापर चढ़ाईके समय विभीषणके शरणमें आनेपर वानर, रीछोंकी सभा करके अपने मंत्रियोंसे सलाह ली एवं उनकी सलाहको पूर्ण मान्यता देते हुए विनयपूर्ण शब्दोंमें अपनी शक्ति एवं रहस्यका ज्ञान कराते हुए अपनी इच्छानुसार विभीषणको शरणागति दी, उसी प्रकार हमें भी अपने सलाह देनेवालोंका, मित्रोंका, उनकी सलाहोंका समुचित आदर करना चाहिये एवं मान्यता देते हुए विनयपूर्ण शब्दोंमें अपनी बात समझानी चाहिये। भगवान्‌के प्रत्येक चरित्रका भली प्रकार रहस्य समझनेकी चेष्टा करनी चाहिये एवं उनको अपने जीवनमें उतारना चाहिये, उनका अनुकरण करना चाहिये।

श्रीमन्नारायण! नारायण!! नारायण!!!

❑❑

श्रद्धाकी महिमा

आज आपको श्रद्धाके विषयमें कुछ बतलाया जाता है, ध्यान देकर सुनें। श्रद्धा ऐसी चीज है कि इस एक ही बातसे हमारा बेड़ा संसार सागरसे पार हो सकता है। हमलोगोंमें श्रद्धाकी कमी है, हमलोगोंमें साधनकी ढिलाई है व अकर्मण्यता है, आलस्य है, हमलोग ईश्वरमें प्रेम एवं श्रद्धा नहीं रखते। यदि मात्र एक श्रद्धा हम स्वयं कर लें तो ईश्वर बाकी सारी बातें हमारेमें अपने-आप उपलब्ध कर देते हैं। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥

(गीता १७। ३)

हे भारत! सभी मनुष्योंकी श्रद्धा उनके अन्तःकरणके अनुरूप होती है। यह पुरुष श्रद्धामय है, इसलिये जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है वह स्वयं भी वही है।

अर्जुनने पहले प्रश्न किया था कि जो पुरुष शास्त्रकी मर्यादाको छोड़कर श्रद्धासे पूजन, यजन करता है, उसकी श्रद्धा सात्त्विक है अथवा राजस है अथवा तामस है। भगवान्‌ने कहा देहधारी जीवोंकी श्रद्धा तीन प्रकारकी होती है—सात्त्विक, राजस एवं तामस। जो श्रद्धा शास्त्रोंद्वारा उत्पन्न होती है वह शास्त्रजा श्रद्धा कहलाती है एवं स्वभावजा श्रद्धा पूर्वजन्म और इस जन्मके कर्मोंके अनुरूप होती है। सब पुरुषोंकी श्रद्धा अपने-अपने अन्तःकरणके अनुरूप हुआ करती है। पुरुष श्रद्धामय है। वह श्रद्धा अनन्त जन्मोंसे बनी हुई है और इसीलिये उसका स्वभाव ही श्रद्धा बन जाता है। जिस प्रकार लोकमें हर मनुष्यकी कीमत

धन, बल आदिसे मानी जाती है और उसीके अनुरूप उसकी प्रतिष्ठा होती है, ठीक उसी प्रकार ईश्वरके यहाँ हर मनुष्यका मूल्य, प्रतिष्ठा उसकी श्रद्धासे आँकी जाती है। संसारमें अर्थकी प्रधानता है। सब लोग अर्थमें बिके हुए हैं, अर्थके दास हैं, परन्तु प्रभुके यहाँ ऐसी बात श्रद्धासे ही है।

भक्त और विद्वान् अपनी छोटी-सी भूलको भी पहाड़के सदृश देखते हैं एवं बतलाते हैं। वे उसे कभी छोटी नहीं मानते। जिस प्रकार भरतजीने कहा है—

कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहिं लीन्हा॥

इसी प्रकार श्रीभीष्मपितामह युधिष्ठिरसे कहते हैं—मैं तो अर्थका दास हूँ, इसलिये कौरवोंका साथ दे रहा हूँ, अन्यथा तुम्हें कैसे छोड़ता? उच्चकोटिके मनुष्योंमें यह गुण होता है कि वे अपने दोषोंको पहाड़ समझते हैं, उनकी ओरसे लापरवाही नहीं करते। यही कारण है कि उनमें दोष टिक नहीं पाते। संसारमें अर्थकी प्रधानता है। किसी मनुष्यके पास यदि रुपये हैं तो उसके सारे दोष रुपयोंकी आड़में छिप जाते हैं। दूसरे लोग भी उनकी निन्दा नहीं करते हैं, क्योंकि डरते हैं। पर भगवान्के आगे किसीके दोष चाहे वे कितने ही छिपाता रहे, नहीं छिप सकते और उनका ईश्वरीय विधानके अनुसार दंड अवश्य ही भुगतना पड़ता है। बड़े-बड़े जमींदारों, राजाओं, धनियोंके बालकोंमें काफी दुर्गुण होते हैं और वे व्यभिचार, जुआ, शराब आदि बुरे व्यसनोंमें पड़कर अपने तथा दूसरोंके धर्मको बरबाद करते हैं। उनका पाप रुपयेकी आड़में भीतर-ही-भीतर बढ़ा करता है, पर उनको कितने ही छिपानेपर भी एक दिन प्रगट तो होना ही है। जब पापका गड्ढा भर जाता है एवं प्रकट हो जाता है, तब वह

सर्वनाश करके ही छोड़ता है। रुपयोंसे दोष ढके जाते हैं, पर श्रद्धासे तमाम दोषोंका विनाश हो जाता है। हमलोगोंमें जिसकी भी उच्चकोटिकी श्रद्धा होगी, भगवान् उसका आदर करेंगे और हम सब भी उसका आदर करेंगे। श्रद्धा है इसलिये वह आस्तिक है। जिस मनुष्यके अन्दर भावना नहीं होती, श्रद्धा नहीं होती, उसे शान्ति प्राप्त नहीं होती और जब शान्ति प्राप्त नहीं होती तो सच्चा सुख एवं आनन्द कभी प्राप्त नहीं हो सकता। भगवान् कहते हैं—हे अर्जुन! श्रद्धा अन्त:करणके अनुसार होती है, पुरुष श्रद्धामय है, श्रद्धा ही उसका स्वरूप है।

अब प्रश्न यह है कि अगर हमारी या आपकी श्रद्धा आज बढ़ गयी तो साधन आज बढ़ेगा या नहीं। ऐसा तो नहीं है कि श्रद्धा आज हो रही है, साधन कुछ समय या कुछ दिन बाद बढ़ेगा? बात ऐसी नहीं है। जिस समय भी आपकी श्रद्धा बढ़ जायगी और जिस भी विषयके अन्दर बढ़ गयी, बस, उसी समय आपका साधन भी बढ़ गया। जैसे भगवान् हैं, आपके श्रद्धा और विश्वास होनेपर जितनी मात्रामें भी आपकी श्रद्धा होगी, आप उतने ही उनके निकट पहुँच जायँगे। कोई महात्मा हैं, आप उनमें जितनी श्रद्धा रखेंगे, उतने ही उनके निकट हो जायँगे, उतने ही उसके विश्वासपात्र बन जायँगे। इसी तरह प्रभुपर विश्वास करनेसे उनके विश्वासपात्र बन सकते हैं। हमको महात्माओंद्वारा, शास्त्रोंद्वारा अपने हृदयमें विश्वास करनेसे यह बात माननी चाहिये कि भगवान् हैं। वास्तवमें हमारे नित्यके पिता तो परमात्मा ही हैं, वही जगत्-पिता और परम पिता हैं। ये पिता तो सांसारिक हैं। वास्तवमें विचार करनेपर ज्ञात होगा कि ये तो हमारे शरीरके ही पिता हैं। इस जन्ममें ये पिता हैं, न मालूम पूर्व जन्मोंमें कौन-

कौन हमारे पिता रहे, इसलिये ये हमारे लौकिक एवं शरीरके ही पिता हैं, हमारा सदैवका पिता तो ईश्वर ही है।

जिस प्रकार पुत्रके नालायक हो जानेपर भी माता-पिताका स्नेह उसपर कम नहीं होता। यह हालत तो सांसारिक पिताओंकी है, इसीसे अनुमान लगा लेना चाहिये कि जो हमारा सदैवका पिता है उसका हमपर कितना स्नेह हो सकता है। जिस प्रकार पुत्रके कपूत होनेपर पिता त्याग नहीं करता, उसी भाँति भगवान् भी हमारा त्याग नहीं करते। हम भले ही त्याग दें, पर भगवान् या पिता हमें कभी नहीं त्यागते। पिताको त्यागकर तो हम उसके दायरेसे बाहर भी हो सकते हैं और रह सकते हैं, किन्तु भगवान्‌का दायरा तो इतना बड़ा है कि कोई जगह उससे बाहर नहीं, यदि भगवान् हमें देशसे निकाल दें तो हमें कहीं भी स्थान नहीं। हम चाहे कितना ही अपराध क्यों न करें भगवान् हमारे लिये भला ही करते हैं, वे हमें कभी भी नहीं त्यागते।

महात्मा पुरुष, धर्म और ईश्वर कभी किसीका त्याग नहीं करते, यदि इनको त्यागनेवाला कोई फिर इनकी शरण आता है तो उपेक्षा नहीं करते, अपितु आदर एवं स्नेहपूर्वक अपना लेते हैं। उदाहरणार्थ एक छोटी-सी कहानी है।

कोई एक संन्यासी महात्मा थे। उस नगरका एक धनी व्यक्ति नास्तिक था। वह कभी साधु-संन्यासीका आदर नहीं करता था, अपितु अश्रद्धापूर्वक तिरस्कार कर दिया करता था। उस नास्तिकने महात्माजीकी परीक्षा लेनेकी सोची तथा एक दिन जाकर विनय एवं आग्रहपूर्ण शब्दोंमें उन्हें निमन्त्रण दे आया। इधर अपने घरपर द्वारपालको निर्देश दे दिया कि इस समय यदि कोई बाबाजी भोजन करने आयें तो उसे अपमान करके निकाल

दिया जाय, वैसा ही हुआ। महात्मा नियत समयपर पहुँचे। द्वारपालने बीचमें ही उन्हें दुत्कार दिया। वे बिना बुरा माने शान्तचित्तसे लौट आये। दूसरे दिन वह नास्तिक फिर पहुँचा और बड़े पश्चात्ताप भरे शब्दोंसे कहने लगा कि प्रभु! मैं कल.कचहरी चला गया था तथा द्वारपालको मैंने बताया नहीं था, अत: उसने आपका अज्ञानवश अपमान कर दिया, अब आप कल अवश्य पधारें। महात्माजीने फिर निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। समयपर उसके घर पहुँचे किन्तु आज द्वारपालने पहले दिनसे भी उग्र अपमान किया तथा धक्का देकर, मारकर निकाल दिया, किन्तु महात्मा बिना कुछ कहे शान्तचित्तसे निकल आये। वे नास्तिक महाशय फिर तीसरे दिन पहुँचे और कहने लगे कि स्वामी! मैं बड़ा मंदभागी हूँ, मैं पापी हूँ, मुझे द्वारपालसे कहनेकी याद ही नहीं रही। आज आप पधारें मैं गलती नहीं होने दूँगा। महात्माजी तो बेचारे निर्विकार थे, फिर निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। अबकी बार द्वारपालने उनका जूतोंकी मारसे स्वागत किया, पर महात्माजी फिर उसी प्रकार शान्तचित्तसे लौटने लगे। उधरसे नास्तिक महाशय जिनके संकेतसे परीक्षाके लिये यह सारा काण्ड हो रहा था, किवाड़की ओटमेंसे यह सब देख रहे थे। महात्माजीको लौटते देखकर वे बाहर आये और उनके पैरोंमें गिर पड़े तथा कहने लगे कि महाराज! मैं नास्तिक था, परन्तु आज आपकी कृपासे आस्तिक हो गया, मेरी आपमें श्रद्धा हो गयी है, मैं आपकी परीक्षा ले रहा था। प्रभु आप निर्विकार हैं। मेरे इतने दुर्व्यवहारपर भी आपको क्रोध नहीं आया। मेरे निमन्त्रण देनेपर और अपमान होनेपर भी दूसरे और तीसरे दिन आप मेरी प्रार्थना-पर पधारते रहे। साधु हँसे, कहने लगे—भाई! इसमें बड़ाईकी

क्या बात है। यह गुण तो कुत्तोंसे भी सीखा जा सकता है। उन्हें रोटी दिखाकर बुला लो, डंडा मारकर निकाल दो और फिर रोटी दिखाकर बुला लो। वह व्यक्ति उसी दिनसे पूर्ण आस्तिक एवं श्रद्धालु हो गया।

भगवान् भी उपासकोंकी, भक्तोंकी श्रद्धा देखते हैं। महात्मा भी श्रद्धा ही देखते हैं, परीक्षा लेते हैं। वे श्रद्धालुको ही पात्र मानते हैं। जिस प्रकार भगवान् पूर्ण श्रद्धालुके समक्ष प्रकट हो जाते हैं तथा अपने-आपको उसके हाथोंमें सौंप देते हैं। उसी प्रकार महात्मा भी श्रद्धालुके सामने प्रकट हो जाते हैं तथा अपना रहस्य उससे नहीं छिपाते। जैसे कोई सेठ अपने विश्वासीको अपना अधिकारपत्र सौंप देता है, परन्तु जो जैसा विश्वासका पात्र होता है उसको उतना ही अर्पण किया जाता है। हम विश्वासके पात्र नहीं, अतः भगवान्, महात्मा, धर्मराज हमें दर्शन नहीं देते, परन्तु यदि श्रद्धा हो तो वे बिना बुलाये ही उसके घर पहुँच जाते हैं। श्रद्धाका तात्पर्य है आस्तिक भाव। हमें विश्वास करना चाहिये कि श्रद्धालु पुरुष महात्मा है, हम भी महात्मा बन सकते हैं। भगवान् हमारे बहुत ही निकट हैं, वे सूक्ष्म रूपमें सब जगह विराजमान हैं, किन्तु श्रद्धालुको ही दर्शन हो सकते हैं। वे परमात्मा सब भूत-प्राणियोंके बाहर-भीतर परिपूर्ण हैं, इसलिये सब उनसे पैदा होनेके कारण उनके ही स्वरूप हैं। उनको सूक्ष्म दृष्टिद्वारा समझा जाता है, वे विश्वासी आत्माके बहुत निकट और अविश्वासी आत्मासे बहुत दूर रहते हैं।

जितना विश्वास होगा उतनी अधिक तेजीसे साधन प्रारम्भ हो जायगा। हमारे अन्दर उनसे मिलनेकी उत्कट अभिलाषा जाग्रत् हो जायगी। साधनकी तत्परतासे ही श्रद्धा पहचानी जाती है, यही श्रद्धाकी कसौटी है। जैसे एक सेवक किसी महात्माकी

श्रद्धापूर्वक सेवा करता है तो उसकी सेवाकी तत्परतासे यह अनुमान लग जायगा कि उसमें महात्माके प्रति कितनी श्रद्धा है और वह कितने विश्वासका पात्र है। इसी प्रकार भगवान् भी साधनको देखकर यह जान लेते हैं कि यह कितने आदरका पात्र है, जैसे संसारमें श्रद्धाको देखकर उसको आँका जाता है, उसमें भूल भी हो जाती है, किन्तु भगवान् कभी भूल नहीं कर सकते। वे बिलकुल सही नाप कर लेते हैं। दूसरे लोग वास्तवमें देखा जाय तो जानते भी नहीं। वे तो अनुमान ही लगा पाते हैं, वह भी अपनी बुद्धि और कल्पनाके अनुसार। सच पूछा जाय तो मनुष्य अपने स्वयंको ही नहीं जानता। एक मनुष्यके बारेमें हम भिन्न-भिन्न धारणा करते हैं। जैसे मैं ही हूँ, मेरे बारेमें कुछ अच्छा, कुछ बुरा, कुछ कैसा और कुछ कैसा विचार करते हैं। पर अनुमानसे और मुझे जाननेका दावा करनेवाले मनुष्योंकी तो बात छोड़ो, मुझे सही-सही मैं स्वयं ही नहीं जानता। भगवान् सबको सही-सही जानते हैं। श्रीभगवान् कहते हैं कि मैं सबको जानता हूँ, जो बीत गये हैं उनको भी तथा जो वर्तमान हैं उनको भी तथा जो भविष्यमें होंगे उन्हें भी, किन्तु मुझे कोई नहीं जानता। जो मनुष्य अपने-आपको भी पहचान जाता है उसका तो बेड़ा पार हो जाता है। जिसकी जितनी श्रद्धा है, भगवान् उसीके अनुसार उससे अवश्य मिलेंगे। थोड़ी श्रद्धावालेको विलम्बसे, अधिक श्रद्धा करनेवालेको शीघ्र ही तथा पूर्ण श्रद्धा-वालेको तो नित्य ही मिलते हैं। भगवान् हैं, वे सर्वशक्तिमान् हैं, सामर्थ्यवान् हैं, दयालु हैं, सर्वत्र हैं। वे हमारी प्रत्येक गतिविधिको देखते हैं। वे अन्तर्यामी हैं। हमारे कितने ही छिपानेपर भी कोई चीज उनसे छिप नहीं सकती। यदि हम उनकी इच्छानुसार,

आज्ञाके अनुसार चलें तो हमारा बेड़ा पार है। यदि नहीं चलते हैं तो हममें विश्वासकी कमी है। महात्माओंमें हमारा विश्वास नहीं है। धर्ममें श्रद्धा नहीं है।

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यदि कोई कम श्रद्धा रखता हो तो क्या भगवान् उसकी सहायता करके उसमें ज्यादा श्रद्धा उत्पन्न कर देते हैं? मेरा विश्वास है कि भगवान् अवश्य ही सहायता करते हैं। महात्माओंमें श्रद्धा रखनेपर उनसे ही सहायता मिलती है, फिर भगवान्से मिलनेमें सन्देह ही नहीं है। यदि हम भगवान्के सामने अपना ही अपराध मानें, अपनी ही सेवामें कमी समझें तो भगवान् प्रसन्न होते हैं। जब कोई भक्त रूठ जाता है तो भगवान् स्वयं उसे मनाते हैं। श्रीभगवान् हमारे स्वामी हैं, प्रत्येक चीज उन्हींकी है। हमें हर काम भगवद्बुद्धिसे ही करना चाहिये। लाभ-हानिमें भगवान्को हर्ष-शोक नहीं होता, हमें भी नहीं करना चाहिये। यदि हमारेमें ऐसा हो जाता है तो हम जीते हुए भी मुक्त हैं।

भगवान् अर्जुनसे कहते हैं कि उन्नति और अवनतिको समानभावसे देखना चाहिये। तुम्हारा कर्तव्य युद्ध है, प्राणपणसे उसमें तुम्हें चेष्टा करनी चाहिये, परन्तु युद्धके परिणाममें चाहे जय हो अथवा पराजय, समान भाव रखो। हमें अपने वर्णाश्रम धर्मके अनुसार अपने-अपने कर्म करने चाहिये। ऐसा करनेसे हम परमार्थ बुद्धिको प्राप्त हो जायँगे। भगवान् यही बतलाते हैं कि अनुकूल-प्रतिकूलमें समान रहो, मान-अपमानमें समभाव रखो। मानापमान शरीरका होता है, आत्माका नहीं। भक्तिसे भी और ज्ञानसे भी देहको आत्मा मान लेनेवाला देहाभिमानी है और इसलिये अज्ञानी है।

उसीमें सारे दोष होते हैं, अतः देहाभिमान नहीं होना चाहिये। कर्मोंके बीचमें समता ही चातुर्य है। जितनी हममें समता आती है उतने ही हम भगवान्‌के निकट पहुँच जाते हैं और विषमता रखनेपर ठीक उतनी ही अधिक दूर हो जाते हैं। चाहे योगद्वारा चले, चाहे भक्तिपर चले, चाहे ज्ञानपर चले, भगवान् समताके तराजूपर सबको तौल लेते हैं।

श्रीभगवान् कहते हैं कि मुझे वही प्यारा है, वही मेरा भक्त है, वही योगी है और वही ज्ञानी है, जो शत्रु-मित्रमें, सर्दी-गर्मीमें, सुख-दुःखमें समान रहता है, अहंता, ममता एवं आसक्तिसे रहित होता है। निन्दा और स्तुतिको समान समझनेवाला और परमात्माके स्वरूपका मनन करनेवाला, भगवान्‌द्वारा रचे हुए प्रत्येक विधानमें संतुष्ट, देहाभिमानसे रहित स्थितप्रज्ञ मुझे प्रिय होता है। यह सारे लक्षण जिसमें घटें, वह गुणातीत होता है। मिट्टीके ढेले, सोनेके ढेले, लोहेका मैल—सबको समान समझनेवाला, मन, बुद्धि और शरीरके अनुकूल-प्रतिकूलमें समभाव रखनेवाला, ज्ञानवान्, ज्ञान-विज्ञानके तत्त्वको जाननेवाला, मध्यस्थ और उदासीनमें, सुहृद् और मित्रमें, वैरी और द्वेषीमें, धर्मात्मा और पापीमें समान बुद्धि रखनेवाला योगी है। हमलोगोंको अपने-आपको तौल लेना चाहिये। सदैव मान एवं अपमानके पलड़ेको सम रखे। मानके पलड़ेको अहंकार और अकड़से भारी नहीं बनाना चाहिये। साधनकालमें भी हमको समतासे चलना चाहिये। यदि समानताके साथ उदारता हो तो भगवान् शीघ्र ही प्राप्त हो जाते हैं। माता-बहनोंको अपना व्यवहार उच्च रखना चाहिये। अपने और दूसरोंके बच्चोंके प्रति समानता रखनी चाहिये और

साथ ही यदि उदारता और रखें तो फिर संसारमें प्रेम और श्रद्धा व्याप्त हो जायगी, हमारे छोटे-छोटे झंझट समाप्त हो जायँगे एवं हमारा आदर बहुत श्रद्धापूर्वक होने लगेगा। आयु समाप्त होती जा रही है, यदि अभी नहीं सँभले तो अन्तमें नरकमें भी जगह नहीं मिल सकेगी।

भाइयोंसे भी विनय है कि वे अपने व्यापारमें झूठ, कपट, चोरी आदिको स्थान न दें। इस तरहके पापसे कमाये धनसे सुख भोगनेकी अपेक्षा उचित और सत्यकी कमाईद्वारा कष्ट पाकर रहना भी अच्छा है।

नौकरी करनेवाले भाइयोंको कभी भी स्वामीका अनिष्ट करनेका विचार भी नहीं करना चाहिये। रिश्वत लेना हराम समझें, कामसे जी न चुरायें एवं मालिकको भी नौकरोंके साथ सद्व्यवहार करना चाहिये। उनको समयपर वेतन देना, अधिक ही दे देना, किन्तु कम नहीं देना, स्वार्थबुद्धि नहीं रखनी चाहिये, उदारता एवं समता रखनी चाहिये। प्रत्येकको अपने धर्मको कितने ही संकट आ जानेपर भी नहीं त्यागना चाहिये। प्रत्येक कार्यमें भगवद्बुद्धि रखनी चाहिये। जैसे तुलाधारजी वैश्य हो गये हैं, वे अपने जीवनभर समता, सत्य, त्यागपर रहे। यही कारण था कि भगवान् एक ब्राह्मणके वेशमें सदैव उनके पास रहते थे और अन्त समयमें अपने साथ विमानमें बैठाकर अपने धामको ले गये।

श्रीमन्नारायण! नारायण!! नारायण!!!

❑❑

15 सनातन धर्म तथा भगवान्‌के उपदेश नित्य हैं

एक बात बहुत रहस्यकी तथा बहुत बढ़िया सुनायी जाती है। जैसे भगवान् वास्तवमें सत् हैं, प्रत्यक्ष हैं, संसारमें शास्त्र तथा महापुरुष भी कहते हैं कि यह बात इत्थंभूत है। इसी प्रकार धर्म सनातन एवं शाश्वत है। कर्मयोग, भक्तियोग तथा ज्ञानयोग उसीके ही अन्तर्गत है। वेद, श्रुति, स्मृति सब भगवान्‌के ही विधान हैं, उन्हींकी ही नीति है। परमात्माकी तरह यह भी सदा नित्य है। इनके लिये भयकी आवश्यकता नहीं। सनातन धर्म लुप्त हो जायगा, इसे जाननेवाले संसारमें नहीं रहेंगे, यह तो हो सकता है, किन्तु फिर पुनः प्रादुर्भाव हो जाता है। महाभारतके नारायणोपाख्यानमें लिखा है कि प्रलयकालमें ये सभी धर्म तथा इनके पृथक्-पृथक् योग सभी परमात्मामें ही विलीन हो जाते हैं। जब संसार उत्पन्न होता है तो वे पुनः प्रकट हो जाते हैं न कि उत्पन्न होते हैं। छिपे हुएका प्रादुर्भाव होता है, जैसा भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं—

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥

(गीता ३। ३)

हे निष्पाप अर्जुन! इस लोकमें दो प्रकारकी निष्ठा मेरे द्वारा कही गयी है। ज्ञानयोगसे सांख्यवालोंको तथा कर्मयोगसे योगियोंको।

इसको नित्य बताया है। दो प्रकारकी ये निष्ठाएँ ही भगवान्‌के सिद्धान्त हैं। भगवान्‌के वचन होनेसे भगवद्धर्म हो गया। जब भगवान्‌के वचन हैं तो उनका विधान हो गया।

प्रवचन—दिनांक १३ जून १९५२।

भगवान्‌का विधान भगवान्‌के साथ है, नित्य है, सदा भगवान्‌के साथ ही रहनेवाला है। जब प्रलयकालमें भगवान् सारी सृष्टिको समेट लेते हैं तो सारा संसार भगवान्‌में ही विलीन हो जाता है। सारे धर्म भी उन्हींमें ही विलीन हो जाते हैं। दूसरे अध्यायके ३९वें श्लोकमें भगवान्‌ने कहा है—

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि॥

(गीता २। ३९)

हे पार्थ! यह बुद्धि तेरे लिये ज्ञानयोगके विषयमें कही गयी और अब तू इसको कर्मयोगके विषयमें सुन—जिस बुद्धिसे युक्त हुआ तू कर्मोंके बन्धनको भलीभाँति त्याग देगा यानी सर्वथा नष्ट कर डालेगा।

यह तुम्हें सांख्यके विषयमें बताया। अब तू उसीको योगके विषयमें सुन। ऐसा कहकर भगवान्‌ने योगकी बड़ी प्रशंसा की। भगवान् कहते हैं—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

(गीता २। ४०)

इस कर्मयोगमें आरम्भका अर्थात् बीजका नाश नहीं है और उल्टा फलरूप दोष भी नहीं है। बल्कि इस कर्मयोगरूप धर्मका थोड़ा-सा भी साधन जन्म-मृत्युरूप महान् भयसे रक्षा कर लेता है।

इस योगके आरम्भका विनाश नहीं होता, क्योंकि यह अविनाशी है। योगकी जबतक पूरी प्राप्ति नहीं होती, तबतक वह जन्मता, मरता रहता है, किन्तु निष्कामभावसे किया हुआ इस योगका आचरण कल्याण करके ही छोड़ता है। इसका उलटा परिणाम भी नहीं होता।

सकाम कर्मके दो भेद होते हैं एक तो कर्तव्य है, उसे नहीं करता है तो पाप लगता है दूसरा है काम्य कर्म। दूसरेको करनेके लिये बाध्य नहीं है। करनेवालेकी प्रसन्नतापर ही निर्भर है। कोई सकाम भावसे कर्म करता है, उसमें यदि कुछ भूल हो जाती है तो वह पापका भागी होता है। निष्काम कर्म करे, उसमें यदि भूल भी हो जाय तो वह दण्डका भागी नहीं होता। मान लें कि आप अस्वस्थ हैं, मैं आपकी सेवा निष्कामभावसे कर रहा हूँ। रातमें लालटेन जलानेकी आवश्यकता पड़ गयी। लालटेन जलाने लगा, अन्धेरा तो था ही। अचानक ही उस लालटेनका शीशा फूट गया। मैं कर तो रहा था भला, किन्तु हो गयी हानि। जिसकी हानि हो गयी वह यह नहीं कहता कि शीशेके दस आने लगे हैं, ग्यारह आने दो। वह सोचता है कि यह हमारे भलेके लिये ही कर रहा था, किन्तु हानि हो गयी। यदि मैं पश्चात्ताप करता हूँ तो वह कहता है कि आपका कुछ भी दोष नहीं है। आप तो भलेके लिये ही करते थे, किन्तु हानि हो गयी। जो निष्कामभावसे कर्म करता है उसके कर्म करनेमें कुछ गड़बड़ी भी हो जाय तो वह दण्डका भागी नहीं होता। इस धर्मका थोड़ा भी पालन महान् भयसे तार देता है। भगवान्‌ने इस योगकी बड़ी महिमा गायी है। २। ३९ में प्रतिज्ञा की और ४० से इस अध्यायकी समाप्तिपर्यन्त इसी कर्मयोगका ही वर्णन चला। आगे यह भी कह दिया कि इसके फलीभूत होनेमें अड़चन उत्पन्न करनेवाले काम, क्रोध या राग-द्वेष हैं, इन्हें हटा देना चाहिये।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

(गीता ३। ३७)

ये काम, क्रोध रजोगुणसे उत्पन्न हुए हैं। यह महाशन अर्थात्

बहुत खानेवाले हैं तथा महापापी हैं। इनको तू शत्रु जान। फिर इनके नाश करनेकी भी बात बता दी।

जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।

(गीता ३। ४३)

बुद्धिके द्वारा मनको वशमें करके हे महाबाहो! तू इस कामरूप दुर्जय शत्रुको मार डाल।

फिर आगे चौथे अध्यायके प्रारम्भमें ही कह दिया—

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥

(गीता ४। १)

इस प्रकार यह योग मेरे द्वारा पहले सूर्यको कहा गया, सूर्यने अपने पुत्र मनुसे कहा, मनुने इक्ष्वाकुसे कहा, यह योग अविनाशी है।

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप॥

(गीता ४। २)

इस प्रकार परम्परासे इस योगको राजर्षियोंने जाना। यह बहुत कालसे नष्टप्राय हो गया था। वही आज मैंने तेरे लिये कहा है।

यह परम्परासे प्राप्त योग है। यह अदृश्य हो गया था। इस पुरातन योगको आज मैंने तेरे लिये कहा है, क्योंकि तू मेरा सखा है। यह योग अविनाशी है। इसका कभी विनाश नहीं होता, यह अव्यय है। आगे भी जगह-जगह देखिये। ९। २ में भी यही बात बतायी। उन्होंने कहा कि तुझे विज्ञानसहित ज्ञान कहूँगा, जिसको जानकर कुछ भी जानना शेष नहीं रहेगा।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥

(गीता ९। २)

यह विद्या सब विद्याओंका राजा है। गोपनीयोंमें भी राजा है। सबसे ज्यादा गोपनीय है। यह पवित्र वस्तु है। पापी भी इससे पवित्र हो सकता है। इससे उत्तम कोई भी पदार्थ नहीं है। इसका फल भी प्रत्यक्ष है। धर्ममय है। इतना होनेपर भी करनेमें यह सुगम है, अविनाशी है—इतनी बातें बतायी। यहाँ भी इसे अविनाशी बताया। इसी प्रकारसे भगवान्‌ने अपना स्वरूप बताया है। चौदहवें अध्यायके अन्तमें भगवान् कहते हैं—

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥

(गीता १४। २७)

ब्रह्मकी मैं प्रतिष्ठा हूँ। ब्रह्म मेरा ही स्वरूप है। कैसा है? अविनाशी है। शाश्वत धर्म, सनातन धर्म भी मैं ही हूँ। एकान्तिक सुख जो उच्चसे उच्चकोटिका सुख है, अनन्तसुख, नित्यानन्द मेरा ही स्वरूप है। अमृत भी मेरा ही स्वरूप है। ये सारी बातें कहीं। सिद्ध यह हुआ कि भगवान्‌से भिन्न कुछ भी नहीं है। एकान्तिक सुख आदि सभी नाम ब्रह्मके ही हैं। यानी मेरा ही स्वरूप है। इसी प्रकार जो यह हमारा सनातन धर्म है, इसका अभाव हो ही नहीं सकता। नास्तिकता चाहे कितनी ही क्यों न बढ़ जाय; किन्तु हमारे धर्मका कभी भी अभाव नहीं हो सकता।

संसारमें चाहे कितना भी आन्दोलन क्यों न चल जाय, किन्तु हमारा धर्म ज्योंका त्यों रहेगा। कोई यह बात कहे कि मैं ईश्वर और उनके विधानको नष्ट कर दूँगा तो यह समझना चाहिये कि यह अभीतक बालक (अबोध) है। नास्तिकतासे तो हानि ही होती है। महात्मा गाँधीने नामके बलपर ही इतनी उन्नति की। उन्होंने कहा कि उसी ईश्वरके नामस्मरणसे मुक्ति हो सकती

है। वे स्वयं राम-नामके पुजारी थे। वे स्वयं राम-नामकी महिमा गाते थे। वे ईश्वरमें विश्वास रखनेवाले थे, उच्चकोटिके आस्तिक थे। ये सब बातें समझनी चाहिये। संसारमें जितने हिन्दू हैं उनकी तो बात ही क्या, मुसलमान भाई भी भगवान्‌को मानते हैं। वे भी अल्ला, खुदा कहते हैं। जैसे जलको Water, अप, नीर, जल, पानी आदि कुछ भी कह दो, जलसे ही सम्बन्धित हैं। जैसे जलके कई नाम हैं वैसे ही परमात्माके कई नाम हैं। मुसलमान भाई अल्ला, खुदा कहते हैं, आर्यसमाजी भाई ओंकार कहते हैं। अंग्रेज लोग उसीको ही God कहते हैं। सनातनधर्मी उसीको ही राम, कृष्ण तथा अन्य कई नामोंसे पुकारते हैं। नाम पृथक्-पृथक् है, परमात्माको सभी मानते हैं। बहुत-से किसी भी धर्मको नहीं मानते। ईश्वरके विधानका नाम ही धर्म है। सनातनधर्मकी समय पाकर कमी हो सकती है, किन्तु अभाव नहीं हो सकता। पुस्तकें तथा उनके पन्ने नष्ट हो सकते हैं, किन्तु उनमें जो लिखे गये हैं उन भावोंको कौन नष्ट कर सकता है। किसीकी भी सामर्थ्य नहीं है कि उन्हें नष्ट कर दे। शिलालेखोंको नष्ट कर सकता है, किन्तु जब ईश्वर प्रकट होते हैं तो वे पुनः प्रचार कर देते हैं। परमात्माका यदि नाश हो तो धर्मका भी नाश हो। जब महाप्रलय होता है तो ये सब उस परमात्मामें विलीन हो जाते हैं। महासर्गके आदिमें फिर ईश्वरसे प्रकट हो जाते हैं। जैसे सूर्य आदि सभी प्रकट होते हैं, वैसे ही धर्म प्रकट हो जाता है। यह बात समझनी चाहिये कि सनातन धर्मका कभी विनाश नहीं होता। यह गीतामें भी बताया है। वह नित्य है, सनातन है, उसका कभी भी विनाश नहीं हो सकता। भगवान् स्वयं अवतार लेकर इसकी स्थापना कर देते हैं।

१६ यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

(गीता ४। ७)

हे भारत! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूपको रचता हूँ अर्थात् साकाररूपसे लोगोंके सम्मुख प्रकट होता हूँ।

भगवान् अवतार लेकर धर्मको माननेवालेका तो उद्धार कर देते हैं और न माननेवालोंका संहार कर देते हैं। राक्षसोंका विनाश तथा धर्मकी संस्थापना करके अन्तर्धान हो जाते हैं। गीता भगवान्की साक्षात् वाङ्मयी मूर्ति है। ये भगवान्के वचन हैं, उनके बताये हुए उच्चकोटिके धर्म हैं। हो सकता है कि गीताके जाननेवाले भी आगे न मिलें, सम्भव है कि पुस्तकें भी न मिलें, किन्तु जो नियम हैं उनका अभाव नहीं हो सकता। इसके बारेमें किसी प्रकारकी भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। समय पाकर अधर्म बढ़ जायगा, सनातन धर्म लुप्त हो जायगा, तब भगवान् स्वयं अवतार लेकर सनातन धर्मकी संस्थापना करेंगे। हमारा धर्म मिट जायगा, हमें इस विषयकी कोई भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। इस विषयकी आपको यह गुह्य बात बतायी। संसारमें निश्चिन्त होकर घूमना चाहिये। धर्मका नाश होगा यह बात हो ही नहीं सकती। महासर्गके आदिमें फिर प्रकट हो जाता है। इसका बिलकुल अभाव नहीं हो सकता। परमात्मामें विलीन होकर फिर कायम रहनेवाला है। जैसे बर्फ है उसका जल हो गया तो यह नहीं समझना चाहिये कि बर्फका अभाव हो गया। बर्फका अभाव नहीं हुआ, अपितु परिवर्तन हो गया। वापस जब चाहे तब उस पानीसे बर्फ बना सकते हैं। बर्फ जलमें विलीन हो गया, उसी प्रकार परमात्मामें धर्म

विलीन हो जाता है। फिर प्रकट हो सकता है। परमात्मा नित्य हैं, धर्म भी नित्य है, अतः उसे सनातन कहा गया है। यदि आप कहें कि जब यह सनातन है तो आप इसका प्रचार क्यों करते हैं? इसके कई कारण हैं—१. उसके प्रचारसे इस धर्मका धारण हो जाय, जिससे मनुष्योंका कल्याण हो जाय। यदि दूसरोंका उद्धार हो गया तो कितने आनन्दकी बात है। संसारमें जीते रहेंगे, तबतक कुछ न कुछ तो करेंगे ही। इससे बढ़कर हमें कोई दूसरा काम बताओ तो वह काम करने लग जायँ। मैंने यह काम उत्तम समझा, इसलिये इसे करना प्रारम्भ किया। बहुत-से लोग भोग भोगनेमें अपना समय व्यतीत करते हैं, बहुत-से झूठ, कपट, चोरी, नशेबाजी, चौपड़-ताश खेलनेमें अपना समय बिताते हैं। मैंने सोचा कि अध्यात्म, भक्ति, वैराग्यका विषय सब विषयोंमें अच्छा है, उसमें ही समय बिताना चाहिये। चेष्टा करना तो अपने हाथकी बात है, किन्तु होना न होना यह तो अपने वशकी बात नहीं। जो बल, बुद्धि, साधन, योग्यता एवं समय है, अपना कर्तव्य समझकर मानवको उसका सदुपयोग करना चाहिये। किसी हेतुको लेकर किया जाना तो खराब है। भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार स्वर्गकी प्राप्तिके लिये होंगे तो स्वर्ग मिलेगा, पुत्र, स्त्री या धनके लिये होंगे तो वे वस्तुएँ मिलेंगी। मुक्तिकी कामना रखना भी सकाम है। कर्तव्य समझकर ही करना चाहिये।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

(गीता २। ४७)

तेरा कर्म करनेमें ही अधिकार है, उसके फलोंमें कभी नहीं। इसलिये तू कर्मोंके फलका हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करनेमें भी आसक्ति न हो।

कर्म करनेमें ही अपना अधिकार है कर्मके फलमें कोई भी किसी प्रकारकी भी आसक्ति नहीं होनी चाहिये।

अहंता, ममता ये कर्मफलके हेतु हैं। कर्मोंके फलका तू हेतु भी मत बन। हेतुरहित होकर कर्म करना चाहिये।

कर्म करनेमें ही अपना अधिकार है। जो अधिकार है उसका त्याग नहीं करना चाहिये। कौनसे कर्म करने चाहिये? जो शास्त्रविहित कर्म हैं, उनमें भी उत्तम कर्मोंको करना चाहिये। भजन, ध्यान, तीर्थ, व्रत, दान, तप, सेवा—ये उत्तम कर्म हैं। उनमें भी उत्तम भावसे करना और भी ऊँचा है। हेतुरहित निष्कामभाव तो सबसे ऊँची चीज है। इस प्रकार अपना कर्तव्य समझकर कर्म करना चाहिये। यदि आप कहें कि आपके तो यह व्यसन है यह बात ठीक ही है। यदि आप इससे अच्छा और कोई काम बतायेंगे तो हम उसको मान लेंगे। हेतुरहित होकर कर्म करना चाहिये। भगवान् हेतुरहित कर्म करनेवाले हैं। इसलिये इतने ऊँचे हैं। जो उनके भक्त होते हैं, वे भी हेतुरहित कर्म करनेवाले होते हैं। रामचरितमानसमें तुलसीदासजीने कहा है—

हेतुरहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥

हे असुरारि! या तो आप ही या आपके भक्त ही हेतुरहित दया या कृपा करनेवाले होते हैं।

स्वारथ मीत सकल जग माहीं। सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं॥

बाकी तो सब स्वार्थके ही मित्र हैं। स्वार्थको त्यागकर मित्रता करनेवाला और कोई भी नहीं। भगवान् भी हेतुरहित उपकार करनेसे ऊँचे माने जाते हैं। संसारमें भी कोई हेतुरहित उपकार करता है तो वह ऊँचा माना जाता है। ऊँची चीज है, किन्तु प्रयास

तो हरेक व्यक्ति कर ही सकता है। इसीको लक्ष्यमें रखकर भक्ति करनी चाहिये। हमको शास्त्रविहित कर्म तथा उनमें भी उत्तम एवं उच्चभावसे कर्म करने चाहिये। सबसे ऊँचा कर्म है निष्काम प्रेमभाव। दूसरोंका हित अवश्य करना चाहिये, जिससे इस लोक और परलोकमें सबका कल्याण हो। चेष्टा करना हमारा कर्तव्य है। अपना कर्तव्य समझकर उत्तमसे उत्तम चेष्टा रखनी चाहिये। वही धर्म है। उसका पालन यदि निष्कामभावसे हो तो वह सबसे बढ़कर है, उसके समान और कोई भी नहीं। यह बात समझनेकी है कि धर्मका अत्यन्त अभाव हो ही नहीं सकता। भगवान् नित्य हैं, भगवान्‌का विधान भी नित्य है। चिन्ताकी कोई बात नहीं। जबतक जीयें तबतक अपना कर्तव्य समझकर पालन करना चाहिये। सत् वस्तुका कभी भी अभाव नहीं हो सकता। यह धर्म सदा रहनेवाला है। चिन्ताकी कोई भी आवश्यकता नहीं। ईश्वरका विनाश हो ही नहीं सकता। जैसे ईश्वरका विनाश नहीं हो सकता है वैसे ही धर्मका भी विनाश नहीं हो सकता। जो कहे कि हम ईश्वरको समाप्त कर देंगे तो वह मूर्ख है। उस परमात्माकी सत्तासे ही सबकी सत्ता है। जो ईश्वरको मानता है वही आस्तिक है। जो ईश्वरको नहीं मानता वह नास्तिक है। ईश्वर है ऐसा जो मानता है वह अपने-आप ही ईश्वरके स्वरूपको जान लेता है। ईश्वर है जो ऐसा मान लेता है उसे फिर अपने-आप ही सारा ज्ञान हो जाता है। उससे फिर कानून भंग नहीं होता। जिस प्रकार जो सरकारको मानता है उससे फिर किसी प्रकार भी सरकारकी आज्ञाका भंग नहीं होता। इसी प्रकार जो ईश्वरको मानता है वह फिर उनके विधानको भी भंग नहीं कर सकता। कानूनको भंग करनेवाला आस्तिक नहीं है। ईश्वरको माननेवाला कभी भी उनकी आज्ञाको

भंग नहीं कर सकता। जो उनका कानून ही नहीं मानता, वह भक्त ही क्या हुआ। ईश्वर है यह मानना उच्चकोटिकी चीज है। उनका कानून उनके साथ है। वही धर्म है तथा वही नीति है। निष्कामभावसे कर्म करनेसे मनुष्यका कल्याण हो जाता है। गीता आदि शास्त्रोंको मानना चाहिये। सारे शास्त्रोंका सार गीता है।

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥

सब उपनिषद् गाय हैं। उनके दुहनेवाले भगवान् हैं और दूध पीनेवाला बछड़ा अर्जुन है।

यदि गीताका अच्छा ज्ञान है तो किसी भी शास्त्रकी आवश्यकता नहीं है। महाभारतमें लिखा है—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥

गीताका गायन अच्छी प्रकार करना चाहिये। फिर और शास्त्रोंकी आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि गीता भगवान्‌के मुखारविन्दसे निकली है। अन्य शास्त्र भगवान्‌के मुखकमलसे नहीं निकले। गीताका अनुशीलन अच्छी प्रकार करना चाहिये। गीताकी पुस्तकें चाहे न मिलें, कागज, स्याही चाहे न मिले, ये नित्य नहीं, गीता नित्य है। पुस्तक या कागजका नाम गीता नहीं है। उसमें जो उपदेश है उसका नाम गीता है। यह बात बड़े रहस्यकी है। भगवान् नित्य हैं तो उनके कर्मयोग, ध्यानयोग, ज्ञानयोग सभी नित्य हैं। गीतामें जो भी कुछ कहा है, वह सब सनातन धर्मका ही वर्णन किया गया है। भगवान् नित्य हैं तो उनका धर्म भी नित्य है। भगवान् हैं तो उनका कानून भी है। चाहे लाखों ही ब्रह्मा क्यों न हो जायँ, सनातन धर्म तो नित्य रहेगा।

❑❑

17 प्रेमकी प्रधानता

भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(गीता ९। २६)

पत्र, पुष्प, फल एवं जल जो कोई भी प्रेमी प्रेमसे देता है, उसका दिया हुआ मैं प्रकट होकर खाता हूँ। इसमें दो बातें एक साथ ही आ गयीं—**भक्त्या** तथा **प्रयतात्मनः।** ये बातें जिसमें होती हैं भगवान् कहते हैं उनका दिया हुआ मैं खाता हूँ। हममें प्रेमकी कमी है। प्रेमकी बड़ी आवश्यकता है। वे प्रेमसे खाते हैं। द्रौपदीने प्रेमसे पत्र चढ़ाये, भगवान् खाकर मुग्ध हो गये। विदुरानीके प्रेमसे दिये हुए केलेके छिलके, भीलनीके बेर, सुदामाके तन्दुल प्रेमसे देनेके कारण भगवान्‌ने बड़े प्रेमसे खाये। जहाँ प्रेम नहीं है, वहाँ भगवान् नहीं खाते। दुर्योधनमें प्रेम नहीं था, अतः भगवान्‌ने नहीं खाया। प्रेमसे तथा अपने हाथोंसे देना चाहिये। इस सिद्धान्तको ध्यानमें रखकर हरेक माता-बहिनों एवं भाइयोंको भगवान्‌को अपने हाथोंसे देना चाहिये। मन्दिरोंमें फल, जल पुजारी चढ़ाता है, स्वयं चढ़ानेपर जितना आनन्द आता है, उतना पुजारीके हाथों नहीं। ध्यान रखना चाहिये कि अपने हाथोंसे भगवान्‌की पूजा करनेसे भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं। जैसे एक स्त्री अपने पतिको स्वयं भोजन बनाकर भोजन कराये या कोई दूसरोंसे बनवाकर भोजन करवाये, तीसरा दूसरा ही बनाये तथा दूसरा ही भोजन कराये। अपने हाथोंसे भगवान्‌को देना उत्तम

प्रवचन—दिनांक २७-६-१९५२।

है। वर्तमानके महन्त, पुजारी तथा उनके संसर्गसे स्त्रीधर्म नष्ट हो सकता है। ऐसोंको तो दूरसे ही नमस्कार करना चाहिये। घरमें प्रेमसे पत्र, पुष्पका भोग लगाना चाहिये। आजकल तो पैसे माँगते हैं। कहते हैं पैसा चढ़ाओ। इससे भी अपने हाथोंसे दिये हुएका फल अधिक है। इस सम्बन्धमें एक कथा है।

प्राचीन कालमें काञ्ची नगरीमें चोल नामसे प्रसिद्ध एक राजा राज्य करते थे। एक दिन महाराज चोल अनन्तशयन नामक तीर्थ (जहाँ जगदीश्वर भगवान् विष्णुने योगनिद्राका आश्रय लेकर शयन किया था)-में गये। वहाँ राजाने विधिपूर्वक भगवान् विष्णुके शेषशायी दिव्य विग्रहकी पूजा की एवं विभिन्न दिव्य हार, मोतियोंके हार, सोनेके पुष्प आदिसे भगवान्‌के श्रीअंगोंको सजाया। इसी समय विष्णुदास नामके एक ब्राह्मण देवता हाथमें जल एवं तुलसीदल लिये हुए आये। उन्होंने विष्णुसूक्तसे पाठ करते हुए भगवान्‌को स्नान कराया एवं तुलसीदल एवं तुलसीमंजरीसे उनकी विधिवत् पूजा की, फलस्वरूप राजा चोलके रत्न तुलसीदलोंसे आच्छादित हो गये। यह देखकर राजा चोल कुपित हो उठे एवं बोले—विष्णुदास! मैंने मणियों और सुवर्णोंसे भगवान्‌का सुन्दर श्रृंगार किया था। तुमने तुलसीदल चढ़ाकर उसे ढँक दिया। तुम दरिद्र और गँवार हो। तुम्हारे मनमें भगवान् विष्णुके प्रति भक्तिभावका सर्वथा अभाव प्रतीत होता है।

विष्णुदासने उत्तर दिया—महाराज! भक्ति क्या वस्तु है, इससे आप सर्वथा अपरिचित हैं। केवल राजलक्ष्मीके कारण आपको अपनी श्रेष्ठताका अहंकार हो गया है। बतलाइये, आजसे पहले आपने कितने वैष्णव व्रतोंका पालन किया है।

यह बात सुनकर राजा चोल हँस पड़े और विष्णुदासका

तिरस्कार करते हुए बोले—ब्राह्मण! तुम सदाके दरिद्र हो, मणियों तथा रत्नोंका मूल्य क्या जानो। क्या तुमने भगवान् विष्णुको संतुष्ट करनेवाला कोई महान् यज्ञ किया है? कभी बहुमूल्य वस्तुएँ दानमें दी हैं? आजतक भगवान्‌का एक भी मन्दिर बनवाया है? इतनेपर भी तुम्हें गर्व है कि मैं भगवान्‌का बड़ा भारी भक्त हूँ। अच्छा यहाँ जितने ब्राह्मण उपस्थित हैं वे सब मेरी बात सुन लें। आपलोग देखें भगवान् विष्णुका दर्शन किसे पहले होता है, इसीसे किसमें कितनी भक्ति है, इसका निर्णय हो जायगा।

यों कहकर राजाने महर्षि मुद्गलको आचार्य बनाकर महान् वैष्णव यज्ञ प्रारम्भ किया। उधर विष्णुदास भगवान् विष्णुको सन्तुष्ट करनेवाले व्रत एवं नियमोंका पालन करते हुए वहीं भगवान्‌के मंदिरके समीप टिक गये। एक दिन विष्णुदासने नित्यकर्म करनेके पश्चात् भोजन तैयार किया किंतु जब वे भगवान्‌को भोग अर्पण करनेके लिये गये उस समय किसी व्यक्तिने भोजन चुरा लिया; परंतु उन्होंने दुबारा भोजन नहीं बनाया; क्योंकि ऐसा करनेपर सायंकालकी पूजाके लिये अवकाश नहीं मिलता। इस प्रकार लगातार सात दिनोंतक उनका भोजन कोई उठा ले जाता और वे भूखे रह गये।

आठवें दिन भगवान्‌के अर्पण करनेके बाद वे छिपकर देखने लगे। एक दीन हीन चाण्डाल जिसके शरीरमें हाड़ एवं चामके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दीखता था, वह भोजन उठाने लगा। सबमें भगवान्‌का दर्शन करनेवाले विष्णुदासका हृदय उसकी दयनीय दशाको देखकर भर आया। उन्होंने कहा—भैया! जरा ठहरो तो, क्यों रूखा-सूखा खाते हो? यह घी तो ले लो। सुनते ही भयभीत होकर चाण्डाल बड़े वेगसे भागा और थोड़ी

दूर जाते ही मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। विष्णुदास हाथमें घीकी कटोरी लेकर दौड़ते हुए गये एवं उसे मूर्च्छित देखकर करुणावश अपने वस्त्रके छोरसे हवा करने लगे। इतनेमें वह उठ खड़ा हुआ। विष्णुदासने देखा—वह चाण्डाल नहीं साक्षात् भगवान् नारायण सामने खड़े हैं। भगवान्ने विष्णुदासको छातीसे लगा लिया और अपने ही जैसा रूप देकर वैकुण्ठधामको ले चले।

यज्ञमें दीक्षित हुए राजा चोलने आकाशमें दिव्य विमानपर जाते हुए भगवान् विष्णु एवं विष्णुदासको देखा। यह देखकर उन्होंने महर्षि मुद्गलसे कहा—जिसके साथ होड़ करके मैंने यह महायज्ञ आरम्भ किया था, वह ब्राह्मण मुझसे पहले ही वैकुण्ठधामको जा रहा है। मैंने जप, होम, यज्ञ, दान आदिके द्वारा महान् धर्मका अनुष्ठान किया, तथापि अभीतक भगवान् मुझपर प्रसन्न नहीं हुए। विष्णुदासको भगवान्ने केवल भक्तिके कारण ही मुझसे पहले अपना लिया। जान पड़ता है भगवान् श्रीहरि केवल दान और यज्ञोंसे प्रसन्न नहीं होते। उनकी प्राप्तिमें विशुद्ध भक्ति कारण है। यह कहकर राजाने अपने भानजेको राजसिंहासनपर अभिषिक्त किया एवं यज्ञकुण्डके सामने खड़े होकर तीन बार उच्चस्वरसे कहा—भगवान् विष्णु! आप मुझे मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा होनेवाली अविचल भक्ति प्रदान कीजिये। यों कहकर सबके देखते-देखते वे अग्निकुण्डमें कूद पड़े। राजाका अभिमान गल चुका था। भक्तवत्सल भगवान् विष्णु उसी क्षण अग्निकुण्डमें प्रकट हो गये। उन्होंने राजाको छातीसे लगाकर एक श्रेष्ठ विमानके द्वारा वैकुण्ठधामको प्रस्थान किया।

राजा चोलने दिव्य आभूषण चढ़ाये, विष्णुदासने पत्र, पुष्प चढ़ाये। अन्तमें विजय विष्णुदासकी हुई। राजा तो रुपयोंका दास

था। विष्णुदासने दिखा दिया कि भगवान् प्रेमसे प्रसन्न होते हैं, रुपयोंसे नहीं। रुपयोंकी अपेक्षा अपने हाथोंसे देना उच्चकोटिकी चीज है। राजा चोलमें कंचन-कामिनीका अभिमान है तथा विष्णुदासमें प्रेमकी बात है। मन्दिरोंमें जो पूजा होती है वह पुजारी करता है। भोग भी पुजारी ही लगाता है, आरंती भी पुजारी करता है। हम तो अछूतकी तरह दूरसे देखते रहते हैं। स्वयं सेवा करें तो भगवान् प्रसन्न हो जायँ। स्वयं करनेसे भी मानसिक सेवाको श्रेष्ठ बताया गया है। शरीरसे तो पूजा हो रही है, मन कहीं और रहता है अर्थात् मन कहीं, पूजा कहीं। मनका ही मूल्य है। प्रेम होनेसे ही मनसे होता है। बिना प्रेमके मनसे पूजा नहीं हो सकती। इन्द्रियोंसे तो हो सकती है। मनसे प्रेम तथा श्रद्धासे किया जाय वही श्रेष्ठ है। चाहे निर्गुण निराकारका हो, हृदयमें भगवान्‌की स्थापना करके फिर पूजा करे। यदि हृदयमें कमी हो तो सामने रखकर उपासना करे। फिर मानसिक प्रेमसे हो तो बेड़ा पार हो जाता है। प्रेमसे भगवान् स्वयं प्रकट होते हैं तथा खाते हैं।

यह भगवान्‌की बड़ी उच्चकोटिकी पूजा है। यह आपको रहस्यकी बात बतायी। मानसिक पूजा करनी चाहिये। मानसिक पूजाका उल्लंघन नहीं करना चाहिये। मैं तो इसके बिना भोजन नहीं करता, उपवास करता हूँ। इसे बहुत मूल्यवान् समझकर पचास वर्षमें भी एक दिनका उल्लंघन याद नहीं आता। यह बड़ी रहस्यकी चीज है। जबतक हम अपनी कमी मानते हैं, जबतक प्रेमकी कमी है, तबतक वे नहीं आते तथा नहीं खाते। इस प्रकारसे उचित समझो तो मानो, नहीं तो नहीं। मैं तो प्रेरणा कर दिया करता हूँ, आज्ञा नहीं करता। बालकका भी संकेत तथा प्रार्थना करना

कर्तव्य होता है। सुनना या कहना मालिककी इच्छापर ही निर्भर है। कहना कर्तव्य है, मानना-न-मानना आपकी मर्जी।

एक और दूसरी प्रकारकी पूजा बताता हूँ। है तो बहुत अच्छी, किन्तु समझनेकी बड़ी आवश्यकता है, समझमें आनेसे महत्त्व है। जैसे इसकी महिमा है, वैसे ही उसकी महिमा है। गीता ९। २६ में साकारकी बात बतायी, यहाँ निराकारकी बात है—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(गीता १८। ४६)

।१ यह संसार जिससे उत्पन्न हुआ है, जो सब संसारमें निराकार रूपसे व्यापक है। सबके अन्तःकरणमें आत्मा भी है तथा परमात्मा भी है। मनुष्य अपने कर्मोंद्वारा उनकी पूजा करके मुक्तिको प्राप्त हो जाता है। जो कोई भी कर्म हो उसके द्वारा भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। परमात्मा सब जगह व्यापक हैं। सबकी सेवा भगवान्‌की ही सेवा है। वे सबमें व्यापक हैं तथा सबके हृदयमें विराजमान हैं। भगवान् कहते हैं मैं ही यज्ञोंका भोक्ता हूँ। मनुष्ययज्ञमें मैं ही मनुष्य रूपसे यज्ञ तथा तपोंका भोक्ता हूँ। पितृयज्ञ, भूतयज्ञ आदि जितने भी यज्ञ हैं, भगवान् कहते हैं कि उन सभीका भोक्ता मैं ही हूँ।

घरपर कोई अतिथि आये तो उसे भगवान् नारायण ही समझना चाहिये। कुत्ता, कौआ, गाय आदिको भी दिया जाय तो यह समझना चाहिये भगवान् ही गाय, कुत्तेके रूपमें खा रहे हैं। वे एक ही अनेक हैं। जितने भी वनस्पति, प्राणी हैं, घास, तृण, अन्न तथा जितने भी वृक्ष हैं सब भगवान्‌का स्वरूप हैं। वट, पीपल तथा आँवलेमें जल डालें तो यही समझना चाहिये कि भगवान् ही वृक्ष रूप होकर इनका पान कर रहे हैं। भाव तथा

श्रद्धा ही प्रधान है। यह भी कर्मोंद्वारा पूजा है। सबको नारायणका स्वरूप समझकर उनकी सेवा करे। यह बड़े महत्त्वकी बात है। खेती, व्यापार आदि सभीसे सेवा करे। सेवाभावसे ही सभी क्रियाएँ हों तो शीघ्र ही उनका कल्याण हो सकता है। जल पीये तो पिपासा मिटे, जलके पास ही न जाय तो कैसे मिटे? व्यापारसे भी सेवा कर सकता है, शरीरसे भी तथा खेतीसे भी सेवा कर सकता है। अन्न बढ़िया हो, अधिक हो, दूसरोंको बाँटे तथा उनको सिखाये, यह खेतीद्वारा सेवा है। घरमें पैसा है तो उन पैसोंसे भी कल्याण हो सकता है, यदि उनका अच्छे कामोंमें प्रयोग करे। यह पूजाकी बात आपको बतायी। समझमें आनेके बाद फिर समय नहीं लगता, तुरन्त ही भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। सुनते हैं, समझते हैं, किन्तु हम साधन नहीं करते। इतना सुगम मार्ग है, तब भी हम उसका पालन नहीं करते। इतना सुगम है फिर भी हम उससे वंचित रह गये। बड़ी ही लज्जा तथा शोककी बात है।

पत्र, पुष्पसे भगवान् प्रसन्न होते हैं, केवल प्रेम होना चाहिये। द्रौपदीने पत्र, गजेन्द्रने पुष्प, भीलनीने फल तथा रन्तिदेवने जल चढ़ाया, सभीसे प्रसन्न हो गये। यह बात शास्त्रोंमें मिलती है। सतयुगमें जो सिद्धि दस वर्षके साधनसे मिलती है, वही त्रेतामें एक वर्षमें, द्वापरमें एक महीनेमें, कलियुगमें प्रेमपूर्वक मनसे करनेसे वही सिद्धि एक दिनमें हो सकती है, यह बात स्कन्दपुराण तथा पद्मपुराणमें देख सकते हैं। साठ-सत्तर वर्षकी आयु पाकर भी वंचित रह गये, यह बिना मूर्खताके और क्या हो सकता है। कितनी लज्जाकी बात है। इतना सुगम मार्ग है, फिर भी भटकते रहें। यह मूर्खताके सिवाय और हो ही क्या सकता है।

इसी प्रकार भजन, नामजप तथा कीर्तनके विषयमें है। नामजपके विषयमें शास्त्रोंमें बहुत-सी बातें मिलती हैं। साढ़े तीन करोड़ जपसे सारे पापोंका नाश होकर उद्धार हो सकता है। मनुने कहा है वाणीके द्वारा उच्चारण करके जो जोरसे जप किया जाता है, उसकी अपेक्षा मनसे जो किया जाता है उसका सौ गुना लाभ होता है। यदि साढ़े तीन लाख भी जप किया जाय तो मानवका कल्याण हो सकता है। समय-समयपर कहा जाता है कि श्वासका जप बड़ा मूल्यवान् है। मनका और भी मूल्यवान् है। मनसे ध्यान भी करे तो विशेष लाभ होता है। जैसे मानसिक पूजा महत्त्वपूर्ण है, वैसे ही मानसिक जप भी महत्त्वपूर्ण है। भगवान् खड़े हैं, उनका ध्यान करके उनके स्वरूपपर अपना चित्त लगा दे। नारायणकी उपासना की तो वे मनसे आ गये। भगवान्पर मन्त्र लिखना शुरू किया। ललाटपर आठ, मुकुट सुमेरुपर नारायणकी चार पंक्ति लिख दे। सौ नीचे इस प्रकार लिखे—बाईं तरफ चार अब मस्तकसे ललाटके नीचेकी ओर आये। ललाटके बादमें गाल एवं कन्धेपर पाँच-पाँचका हिसाब ठीक है। भगवान्के चार हाथ हैं, यह तो आपको मालूम है ही। आधे हाथतक पाँच राम-नाम लिखे। नीचेतक पाँच लिखे। पाँच हथेलीपर, एक अंगुलियोंपर, इस तरह एक हाथपर पन्द्रह हो गये और तीन हाथोंपर भी इसी प्रकार लिखे। पाँच चरणोंपर, पाँच घुटनोंपर तथा पाँच जंघापर तथा पाँच पीठपर इस तरह लिखनेसे फिर गड़बड़ नहीं होती। यदि मन इधर-उधर चला जाय तो मामला गड़बड़ हो गया। सब काम मानसिक हैं। भगवान् भी मानसिक हैं, थोड़ा इधर-उधर ध्यान गया, इतनेमें ही तो सब मामला समाप्त हो गया। यहाँ बिना मनके कुछ भी नहीं हो

सकता। मानसिक जप भी है, मूर्ति भी मानसिक है। दर्शन, जप भी मानसिक करे, मानसिक ही लिखता भी रहे। जप तथा ध्यान दोनों मानसिक हुए, यह ऊँचे दर्जेका जप है। दर्शन तथा नामका जप भी मानसिक हो, हृदयमें संकल्प-विकल्पोंका भी अभाव रहे, साथमें श्रद्धा-प्रेम है तो समय भी नहीं लगेगा। निष्कामभावसे या भगवान्‌की प्राप्तिके उद्देश्यसे, उनके दर्शनके लिये या उनसे प्रेम होनेके लिये जो कामना है, यह कामना होते हुए भी निष्काम है। प्रह्लादकी तरह हो तो प्रकट हो जाते हैं। यह श्रद्धा-प्रेमपूर्वक भगवान्‌के नामका तथा स्वरूपका मनसे ध्यानका फल है। मानसिक पूजाकी तरह महिमा है। सतयुगमें विष्णु, त्रेतामें राम, द्वापरमें कृष्ण हुए, वे सच्चिदानन्द ब्रह्मका ही स्वरूप हैं। एक-एकके धारणसे कल्याण हो सकता है। श्रीरामका अनुकरण तथा श्रीकृष्णके उपदेशसे एवं विष्णुके ध्यानसे कल्याण हो सकता है। ध्यान तथा सेवनके लिये तो भगवान्‌का स्वरूप है। जितने भी सद्ग्रन्थ हैं, सबमें भगवान्‌का सदुपदेश भरा पड़ा है। भगवान्‌ने गीतामें इतने थोड़े श्लोकोंमें सार भर दिया। गागरमें सागर भर दिया। घड़ेमें जैसे समुद्र भर दिया हो। गीतामें रहस्य भरा पड़ा है। इसकी संस्कृत भी सरल है। इसके रहते हुए हम मानते हैं कि इससे वंचित रह गये, यह हमारे लिये कितनी मूर्खताकी बात है। खेदकी बात है। एक बार एक हिन्दू भाई विदेश गया, वहाँ पुस्तकालयमें लाखों पुस्तकें थीं। एक पुस्तक मंचपर रखी हुई थी। उसने पूछा यह कौन-सी पुस्तक है? पुस्तकालयाध्यक्षने कहा—भगवद्गीता। उसने कहा—मैं तो नहीं जानता। पुस्तकालयाध्यक्षने कहा—क्या बात है, तुमने कभी पढ़ी नहीं? उसने कहा—कभी मौका नहीं मिला। पुस्तकालयाध्यक्षने कहा कि हम तो तुम्हारे देशसे इस पुस्तकको मँगाकर पूज्य

भावसे रखते हैं। तुम इससे वंचित ही रह गये। फिर उसने सोचा कि हम हिन्दू कहलाते हैं, मुझे इसका अध्ययन करना चाहिये, फिर हिन्दुस्तानमें आकर उसने अध्ययन किया।

नाना प्रकारके देशोंमें बहुत-सी भाषाओंमें गीताका संग्रह किया गया है। गीताकी जितनी टीकाएँ उपलब्ध हैं, उतनी और किसी भी शास्त्रकी नहीं हैं। जो भी हिन्दू ग्रन्थ हैं सबने इसका आदर किया है। उर्दू, फारसी, अंग्रेजी, अमेरिकन आदि सभी भाषाओंमें इसका अनुवाद हुआ है। इस प्रकार समझकर गीताको पढ़ना चाहिये। सबको एक अध्यायका पाठ नित्य करना चाहिये। बारह अध्यायका मूल तथा एक अध्यायका भावसहित पाठ बराबर है। एक अध्यायका भावसहित पाठ तथा एक श्लोकको आचरणमें लाना यह सबसे श्रेष्ठ है। गीता स्वयं भगवान्‌की वाणी है—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥

इसका यदि अच्छी प्रकार अध्ययन किया जाय तो और किसी भी शास्त्रकी आवश्यकता नहीं है। जो भगवान्‌के मुखकमलसे निकली है। इसका नित्य अर्थसहित पाठ करना चाहिये। तत्त्वविवेचनीका भी पाठ करना चाहिये। तत्त्वविवेचनीके दो श्लोकोंका भी यदि प्रतिदिन पाठ किया जाय तो एक वर्षमें पूरी आवृत्ति हो सकती है। ये सब बातें समझकर भगवान् श्रीकृष्णकी गीताकी शरण लेनी चाहिये। यह भगवान्‌की वाणी है। इसकी आज्ञाके पालनसे मनुष्यका कल्याण हो सकता है। गीता साक्षात् भगवान्‌का उपदेश है।

द्वापरमें भगवान् रामके चरित्रके समान किसीका चरित्र न हुआ न होगा ही। वे मर्यादाकी मूर्ति हैं। अभीतक रामराज्यका नाम है।

कृष्णराज्य या विष्णुराज्य नहीं मिलेगा। रामचन्द्रजी-जैसा चरित्र और किसी भी अवतारमें नहीं हुआ। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामका अनुकरण करना चाहिये। उपदेश श्रीकृष्णका अनुकरणीय है। ध्यान योग्य विष्णु हैं। श्रीकृष्ण तथा रामने लोकदृष्टिमें मनुष्यरूपमें लीला की। सबको तो मालूम नहीं था, अतः लोग तिरस्कार भी करते थे। भगवान् विष्णुकी देवताकी-सी आकृति है। उनका शरीर पांचभौतिक नहीं है। जिस प्रकार चन्द्रमाकी चमकीली धातु है, उसी प्रकार भगवान् विष्णुकी चमकीली धातु है। सुन्दरताकी ओर देखें तो भगवान् विष्णु सुन्दर हैं। रामके आचरण उत्तम तथा श्रेष्ठ हैं, अतः वे अनुकरणीय हैं। विष्णु, राम तथा कृष्णके उपदेशको मिलायें तो कृष्णका उपदेश सर्वोपरि मालूम होगा। यदि इन तीनों देवोंकी ओर ध्यानके योग्य देखें तो विष्णु भगवान् ही हैं, उनकी आकृति बड़ी ही सुन्दर है। अब क्या करना चाहिये, यह गूढ़ बात बतायी जाती है। हरेक व्यवहारमें यदि मेरी जगह राम होते, तो क्या करते, इस प्रकार हरेक काममें भगवान् रामको याद कर लेना चाहिये। इसी प्रकार विष्णु भगवान्‌का ध्यान करना चाहिये। भगवान्‌की कृपासे कोई बड़ी बात नहीं। यदि हम भगवान् श्रीकृष्णकी गीताके एक श्लोकके अनुसार भी आचरण बना लें तो हमारी तुलना भगवान्‌के बराबर हो सकती है। हम तो एक श्लोककी मूर्ति हो सकते हैं, पशु नहीं हो सकते। हनुमान्‌के रोम-रोममें जैसे भगवान्‌का नाम था, उसी प्रकार एक श्लोकको रोम-रोममें अंकित कर देना चाहिये। हमारे प्रत्येक रोमसे उसी श्लोककी ध्वनि होनी चाहिये। यदि हनुमान्‌की तरह हमारे रोम-रोममें गीता रम जाय तो हमें अपना अहोभाग्य समझना चाहिये। प्रयत्न करना चाहिये। भगवान्‌पर निर्भर हो जाना चाहिये। यदि हम

विश्वास करेंगे तो भगवान् अच्छा ही करेंगे। विष्णुका स्वरूप ध्यानमें आ जाय तो अपने-आपका ज्ञान ही नहीं रहे, प्रकट होनेपर तो बात ही क्या है? रूपमाधुरीको देख-देखकर मुग्ध हो जाता है, फिर उससे रहा नहीं जाता। वह उस मूर्तिसे एक क्षणके लिये भी हट नहीं सकता। मैं उनको पी जाऊँ ऐसी प्रतीति हो रही है। उसके सामनेसे भगवान् भाग नहीं सकते। सभी महिमा गाते हैं। शास्त्रोंमें महिमा है, शास्त्र ही प्रमाण है। उनका स्वरूप अद्‌भुत तथा अलौकिक है। एक बार प्राप्ति हो गयी तो बात ही क्या है? गुण, प्रभावकी तो बात ही क्या है? उनका स्वरूप भी बड़ा ही सुन्दर है। भगवान्‌के दर्शन करनेके बाद उनसे अलग रहनेकी किसीकी भी सामर्थ्य नहीं है। उनकी प्राप्ति बड़ी सुगम है। पहले ध्यान होता है, फिर वे प्रकट हो जाते हैं। भगवान्‌से अलग रहनेकी किसीकी भी सामर्थ्य नहीं है। पहले भगवान्‌का जप किया जाता है, फिर वे प्रकट हो जाते हैं। ध्रुवने भगवान्‌के चतुर्भुज स्वरूपका ध्यान किया तो भगवान्‌को आना पड़ा। उस समय कठिनता थी, आज छूट है। ध्रुवकी तरह यदि आज हम भगवान्‌की प्राप्तिमें लग जायँ तो महीनोंकी तो बात ही क्या है? एक दिनमें भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है। इसलिये ध्रुवकी तरह हमें उपासना करनी चाहिये।

अब भगवान् रामके अनुकरणकी थोड़ी बात और लीलाके रहस्यकी बात आपको बतायी जाती है। चरित्र ही लीला है। उनको आदर्श मानकर उसके अनुसार चलना—यह अनुकरण है। वास्तवमें अनुकरणकी शिक्षा किस प्रकार लेनी चाहिये। श्रीराम जिस प्रकार अपनी सौतेली माता कैकेयी तथा पिताके वचनोंका आदर करते हैं। इसी प्रकारका हमें भी अनुकरण करना चाहिये। मौसी तो माँके समान है। श्रीरामको हर समय याद कर लेना

चाहिये। श्रीरामने अपने मित्र सुग्रीवके साथ जैसा व्यवहार किया, हमें भी अपने मित्रके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिये। शिक्षा भी दी कि कैसा व्यवहार करना चाहिये तथा करके भी दिखा दिया। वे सीताके वियोगमें एक पागलकी तरह घूम रहे हैं। सुग्रीवका काम पहले किया। हड्डियोंकी ढेरी देखकर पूछा कि यह क्या है। राक्षसोंने मुनियोंको मारा है तो उनपर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा। फिर बताया कि कैसा व्यवहार करना चाहिये। इतना ही नहीं, फिर करके भी दिखा दिया।

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥

भगवान्‌ने भुजा उठाकर प्रण किया कि मैं पृथ्वीको राक्षसोंसे हीन करूँगा और ऋषियोंके आश्रमोंमें जाकर उन्हें सुख दूँगा। हमें भी इसी प्रकार किसीके पास जाकर सन्तोषप्रद व्यवहार करना चाहिये। सुग्रीवको भगवान्‌ने विश्वास दिलाया—

सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान॥

हे सुग्रीव! सुनो मैं वालीको एक बाणसे मार डालूँगा। यदि वह ब्रह्मा तथा रुद्रकी भी शरण चला जाय तो बच नहीं सकता। अपने कामको छोड़कर पहले सुग्रीवका काम किया, फिर स्वयंका काम किया। उनके आचरण आदर्श थे।

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥

जो मित्रके दु:खको देखकर दुखित नहीं होता, उसके दर्शन मात्रसे भारी पाप लगता है।

निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना॥

अपने दु:खको यदि वह पहाड़के समान भी हो तो रजके

समान जाने। मित्रका दु:ख रजके भी समान हो तो उसे सुमेरु पहाड़के समान माने। जो इस प्रकारका व्यवहार न करे, ऊपरसे मीठी-मीठी बातें करे, अन्दरसे और ही सोचे, ऐसेका तो त्याग करना ही श्रेयस्कर है। मित्रपर आपत्ति आये तो उससे सौ गुना प्रेम करना चाहिये।

बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥

मित्रके कोई आपत्ति आ जाय तो उससे सौ गुना मित्रताका व्यवहार करना चाहिये। वे मर्यादा पुरुषोत्तम थे। अत: उन्होंने ऐसा व्यवहार किया। भगवान्‌की हरेक क्रियामें तत्त्व-रहस्य समझना चाहिये। भगवान्‌ने विभीषणके साथ जैसा व्यवहार किया, वैसा ही हमें अपने शरणमें आये हुए पुरुषके साथ करना चाहिये। सूचना मिली कि रावणका भाई आपकी शरणमें आया है, सुग्रीवसे पूछा तो उसने कहा राक्षस मायावी होते हैं, क्या पता वह क्या कर दे। अत: उसे बाँधकर रख लेना चाहिये। तब भगवान्‌ने कहा तुम्हारी सलाह अच्छी है, मित्रोंको ऐसी ही सलाह देनी चाहिये, जैसी देनी चाहिये वैसी ही तुमने दी। सुग्रीवकी खूब प्रशंसा करके कहा कि क्या मेरे सम्मुख कोई मायाको लेकर आ सकता है? क्या सूर्यके सामने अन्धकार आ सकता है? आप कहते हैं कि राक्षस धोखा देते हैं तो मेरा भाई लक्ष्मण क्षणमें पृथ्वीभरके सभी राक्षसोंको मार सकता है। वाणीसे कोई एक बार भी कह दे कि मैं आपकी शरण हूँ तो फिर कुछ विचार ही नहीं करना चाहिये। यह मेरा व्रत है। पहले उसकी बातकी प्रशंसा की, फिर अपना आशय कितनी नम्रतासे रख दिया। फिर विभीषणको बुला लिया, उसके राजतिलक कर दिया और आते ही लंकेश कहा। श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा कि मैंने इसे लंकाका राजा बना दिया है। यदि ऐसा नहीं होगा तो बहुत

बुरा होगा। इतना होनेपर भी हम ध्यान नहीं देते। वाल्मीकिरामायणमें भगवान् रामके वचन हैं कि यदि रावण भी मेरी शरण आ जायगा तो क्या हुआ? मेरे पास जो अयोध्याका राज्य है वह मैं इसे दे दूँगा। हृदयका भाव कितना उच्चकोटिका है। उनका प्रभाव यह है कि एक बाणसे वालीको मार सकते हैं। शरणागतवत्सल हैं। सबसे प्रेम करना चाहिये। मित्रोंके साथ कैसा प्रेम करना चाहिये, जो कह दिया, वह कर दिखाया। मित्रको उसका आदर करके प्रसन्न करना चाहिये। फिर अपनी बात प्रस्तुत करनी चाहिये। उनके भावके साथ अपना भाव मिलाकर व्यवहार करना चाहिये। शरणागतवत्सलताकी इतनी बात होनेपर भी नहीं समझते। वे कहते हैं मैं साक्षात् परमात्मा हूँ। कोई मेरी मायाके सम्मुख आ सकता है? लक्ष्मणका प्रभाव भी बताते हैं, वह एक क्षणभरमें पृथ्वीके सभी राक्षसोंको मार सकता है। लक्ष्मण कहते हैं पृथ्वीको गेंदकी भाँति नचा सकता हूँ, किन्तु प्रभुकी कृपासे। वह अपनी शक्तिको प्रभुकी कृपासे मानते हैं। इस प्रकार लीलामें तत्त्व समझना चाहिये। पूर्ण ब्रह्म परमात्मा राम ही सगुण, निर्गुण, निराकार, साकार सभी हैं—यह समझना चाहिये। यही तत्त्व समझना है। उनकी अद्‌भुत सामर्थ्य है। इस प्रकार उनके गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्यको समझना चाहिये। उनके जीवनका अनुकरण करना चाहिये। इसी प्रकार करने लग जायँ तो हमारा जीवन उच्चकोटिका हो सकता है। ये सारी बातें काममें लानी चाहिये। परमात्मा सबमें विराजमान हैं। जिस प्रकार बादल एवं बर्फ सबमें जल-ही-जल व्यापक है, उसी प्रकार उन परमात्माका क्षण-क्षणमें दर्शन करके मुग्ध होना चाहिये।

❑❑

उद्धारके लिये तत्परताकी आवश्यकता

२० लौकिक कार्योंकी तरह परमार्थमें भी जोर देना चाहिये। जैसे कोई कुआँ खोदता है, दो-तीन हाथ खोदे, जल नहीं निकले तो निराश होकर छोड़ दे तो जल नहीं निकल सकता। निराश न होवे, खोदता ही जाय तो जल अवश्य निकलेगा, चाहे कितने ही हाथोंके बाद क्यों न निकले। तेजीके साथ खोदते रहना चाहिये। उसी प्रकार साधन खूब तेजीसे करना चाहिये। परमात्माकी प्राप्तिके विषयमें निराश नहीं होना चाहिये, तभी सफल होगा। भगवान्‌के आश्रयपर साधन करते रहना चाहिये, छोड़ना नहीं चाहिये। भगवान्‌का आश्रय इसलिये करते हैं कि अपना अहंकार न हो, इस प्रकार विश्वास रखना चाहिये। लौकिक काममें जोर लगानेकी आवश्यकता नहीं है। अपनी आत्माका उद्धार, अपनी आत्माका कल्याण, सत्य बोलना तथा धर्माचरण करनेमें जोर लगानेकी आवश्यकता है। हम व्यापार करते हैं तो सच्चाईसे करना चाहिये, आय हो न हो, सच्चाईमें जोर लगना चाहिये। सांसारिक कामोंमें, भवन बनानेमें, रुपया कमानेमें इतने जोरकी आवश्यकता नहीं है। पुरुषार्थसे जो हो जाय उसमें जोर नहीं लगाना चाहिये। प्रारब्धपर छोड़कर नाममात्र चेष्टा करनी चाहिये। ईश्वर भक्ति, आत्माके कल्याणमें जोर देना चाहिये। एक तो आत्मविश्वास, दूसरा भगवान्‌का सहारा होना चाहिये। एक ही महत्त्वपूर्ण है, दोनों हो तो भगवत्प्राप्ति न होनेका प्रश्न ही नहीं है। उत्साह होना चाहिये। नेपोलियन बोनापार्टने कहा था कि असम्भव कुछ है ही नहीं, जिसे मनुष्य न कर

प्रवचन—दिनांक २१-५-१९५२, दोपहर, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

सकता हो। इस प्रकार जब असम्भव है ही नहीं तो अपनी सारी शक्तिको परमात्माकी प्राप्तिमें लगा देना चाहिये। लक्ष्मणजीका भी यही सिद्धान्त था कि कोई भी ऐसा काम नहीं जो मनुष्यके द्वारा न हो सकता हो। यह विश्वास हमें भी करना चाहिये। भगवान्‌का बल भी साथमें रखना चाहिये। लक्ष्मणजीने कहा मैं ब्रह्माण्डको तोड़ सकता हूँ। सुमेरु पर्वतको तोड़ सकता हूँ। गेंदकी तरह ब्रह्माण्डको उठा सकता हूँ। साथमें भगवान्‌की कृपा भी कह रहे हैं। हमारे मस्तकपर भगवान्‌का हाथ है, हमारे लिये कोई भी कार्य असम्भव नहीं है, ऐसा दृढ़ विश्वास रखना चाहिये। यह बात सबके लाभकी है। हरेकको इसमें ज्यादासे ज्यादा जोर लगाना चाहिये। प्रारब्धके भोगोंमें तो हम पराधीन हैं। जैसे होता है वैसा होगा ही। उसे रोकनेवाला कोई नहीं है। सबसे बढ़कर मनुष्यके लिये यही काम है। जिस कार्यके लिये मनुष्य-शरीर मिला है उसी कार्यको करना चाहिये। अन्य जितनी भी योनियाँ हैं सब भोग योनियाँ हैं। मनुष्य-शरीर आत्मकल्याण यानी परमात्माकी प्राप्तिके लिये मिला है। ऐसे मनुष्य-शरीरको पाकर जो अपना उद्धार नहीं करता, विषयभोगोंमें मन लगाता है, उसे तुलसीदासजीने मूर्ख बतलाया है—

नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

मनुष्य शरीर पाकर भी जो ऐश-आराममें मन लगाता है, वह मूर्ख अमृतको छोड़कर विषको ग्रहण करता है। विषसे तो एक बार ही मृत्यु होती है, किन्तु विषय-भोगोंसे लाखों बार मृत्यु होती है। चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करना पड़ता है।

परमात्माकी प्राप्तिके लिये विशेष समयकी भी आवश्यकता नहीं है। बहुत शीघ्र ही परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। जो

विलम्ब होता है, वह प्रेमकी कमीके कारण ही हो रहा है। श्रद्धा, प्रेमसहित साधन करें तो शीघ्र ही कार्य सिद्ध हो सकता है। रुपयोंके लिये जिस प्रकार चेष्टा होती है, उससे बढ़कर इस लाभमें चेष्टा होनी चाहिये। रुपयोंके साथमें हमारा नित्य सम्बन्ध नहीं है, समय मूल्यवान् है। सांसारिक पदार्थोंके संग्रहमें ही अपने समयको नहीं बिताना चाहिये। ऐश, आराम, रुपया सभी डुबानेवाले हैं। समय उच्च काममें बिताना चाहिये। भगवत्प्राप्ति ही सबसे उच्चकोटिका काम है, इसलिये शीघ्रातिशीघ्र इस कामको कर लेना चाहिये। भगवान्‌ने जगह-जगह घोषणा की है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

(गीता ४। ११)

जो मुझे जैसा भजता है मैं उसे वैसा ही भजता हूँ।

संसारमें जितने पदार्थ हैं सब जड़ हैं, उनसे शान्ति होनी सम्भव नहीं। समझना चाहिये पुरुष अर्थका दास है, अर्थ किसीका भी दास नहीं है। भगवान् कहते हैं जो मुझे अपना सर्वस्व अर्पण कर देता है, मैं अपने-आपको उसके समर्पण कर देता हूँ। यह भगवान्‌की उदारता है, कहाँ तुच्छ जीव, कहाँ भगवान्। सब कामोंको छोड़कर इस कामको करना चाहिये, जिससे मुक्ति हो जाय। यही सबसे बड़ा उद्देश्य है। मनुष्य-शरीर इसीलिये है।

यदि कहो कि हम आवश्यक काममें समय बिता रहे हैं। विचार करना चाहिये, जिस कामके लिये हम आये हैं उससे बढ़कर कोई भी काम नहीं है। जो काम आपके बिना होनेवाला नहीं है, वही आवश्यक है। जो दूसरेसे हो सके वह आवश्यक

नहीं। जो दूसरेके द्वारा न हो सके, अपने द्वारा ही हो सके, वही काम करना चाहिये। अपना उद्धार दूसरोंके द्वारा होनेवाला नहीं है, अतः यह काम पहले करना चाहिये। कमीकी पूर्ति दूसरे कर दें, यह असम्भव है। जो रुपया, पैसा, मकान, सम्पत्ति है उसे तो उत्तराधिकारी सम्भाल लेंगे। उसमें कोई बात नहीं। आत्मकल्याणके विषयमें कमी रह जायगी तो फिर बार-बार जन्म ग्रहण करना पड़ेगा। क्या पता कौन-सी योनिमें जन्म हो। मनुष्ययोनिके सिवाय यदि दूसरी योनि मिली तो हमारे लिये खतरेकी बात है।

ध्यान देना चाहिये, पापीसे पापी भी हो तो कल्याण हो सकता है। भगवान् पापीका भी उद्धार कर देंगे; क्योंकि वह दयाका पात्र है। कमसे कम समय रह गया है। इतनेमें ही हमारा उद्धार हो सकता है। अन्तकालमें स्मृतिसे भी कल्याण हो सकता है। मूर्खको भगवान् बुद्धि प्रदान करनेवाले हैं। जितना बल, जितनी बुद्धि एवं जितनी शक्ति है, सबको भगवान्‌की प्राप्तिमें लगा देना चाहिये। जो शक्ति, बल, बुद्धि एवं धन है, उसको समर्पण करनेके बाद उद्धारमें शंका नहीं है। बल, बुद्धि है ही नहीं तो कहाँसे लायें? इसके लिये हम बाध्य नहीं, भगवान्‌को देना पड़ेगा। आलसीकी जिम्मेदारी भगवान्‌की नहीं है। हमारे पास भी कामचोर व्यक्ति आता है तो हम भी उसे हटानेकी चेष्टा करते हैं। कामचोरकी कहीं भी आवश्यकता नहीं है, भगवान्‌के यहाँ भी आवश्यकता नहीं है। जो कुछ बुद्धि, बल, धन, शरीर है उसको भगवान्‌की प्राप्तिके लिये अच्छी नीयतसे अर्पण कर देनेपर कल्याणमें शंका ही नहीं है। जैसे जो दिवालिया हो जाता है, वह अपने-आप उसके पास जो गहना, घर, सम्पत्ति है, वह महाजनको सौंप देता है, बचाता नहीं तो महाजन दया करके उसे

क्षमा कर देता है, समय दे देता है, वह कमाकर कर्ज चुका देता है। ईश्वर तो दयालु हैं। उनकी दयाकी सीमा नहीं है, यह समझकर सत्यता एवं तत्परताके साथ व्यवहार करेंगे तो कल्याणमें शंका नहीं है। वितर्क, विद्या, प्रतिष्ठाकी कोई भी आवश्यकता नहीं है। केवल अपनानेसे कल्याण हो जाता है। भगवान्‌को अपनाना चाहिये। भगवान् हमारे हैं, यह समझकर अपना सर्वस्व अर्पण कर दे तो उद्धारमें शंका नहीं है। गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

(गीता १८। ६२)

हे अर्जुन! तू उस परमात्माकी शरण जा, उसकी दयासे परम शान्ति तथा अविनाशी पदको प्राप्त होगा। यह भी घोषणा की है कि महापापीका भी उद्धार हो सकता है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(गीता ९। ३०)

यदि कोई दुराचारी भी अनन्यभाव होकर भजता है तो उसे साधु ही मानना चाहिये। वह है तो पापात्मा किन्तु—

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(गीता ९। ३१)

हे कौन्तेय! वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है। पापीसे पापीका भी उद्धार शीघ्रसे शीघ्र हो सकता है। इसी प्रकार मूर्खसे मूर्खका भी कल्याण हो सकता है।

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥

(गीता १३। २५)

जो ऐसा पुरुष है जिसमें ज्ञान, बुद्धि नहीं, मूर्ख है, योगको भी नहीं जानता। भगवान् कहते हैं वह भी यदि सत्संग आदिमें सुनकर साधन करता है तो वह भी संसार सागरसे पार हो जाता है। यह भगवान्ने प्रतिज्ञा की है। चाहे ज्ञान या विवेक न हो, भगवान् अपने-आप ही दे देते हैं—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०। १०)

जो प्रीतिपूर्वक निरन्तर मुझे भजते हैं उनको मैं वह बुद्धियोग देता हूँ जिससे वे मुझे ही प्राप्त होते हैं। अज्ञानीको भगवान् दया करके ज्ञान देते हैं। वह ज्ञानरूपी दीपकके द्वारा अज्ञानरूपी अन्धकारका नाश कर देता है। कितना ही मूर्ख हो, उसके उद्धारमें शंका नहीं है। अभी मृत्यु होनेवाली है तो समयकी आवश्यकता नहीं, क्षणमात्रमें ही उद्धार हो जाता है।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

(गीता ८। ५)

भगवान् कहते हैं कि अन्त समयमें मेरा स्मरण करता हुआ देह त्यागकर जानेवाला मेरेको ही प्राप्त हो जाता है, इसमें शंका नहीं। भगवान्की कृपासे सब कुछ हो सकता है। यह भगवान्की छूट है। यह कानून भी बता दिया।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

(गीता ८।६)

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावको स्मरण करता हुआ शरीरका त्याग करता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है; क्योंकि वह सदा उसी भावसे भावित रहा है।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।

(गीता ८।७)

इसलिये हे वार्ष्णेय! सब कालमें मेरा स्मरण करते हुए युद्ध कर। युद्ध करना तेरा धर्म है। हर समय भगवान्‌को याद रखना चाहिये। युद्धके लिये निरन्तरता नहीं। **सर्वेषु कालेषु**का सम्बन्ध **मामनुस्मर**से है, युद्धके साथ नहीं। युद्ध भी कर, मन-बुद्धि भी मेरेमें लगा, ऐसा करनेपर मुझे ही प्राप्त होगा। यही सिद्ध होता है कि संसारमें परमात्माकी प्राप्ति शीघ्र ही हो सकती है। भगवान्‌की अपनेपर दया समझनी चाहिये। दयाका आश्रय लेना चाहिये। प्रयत्न करना चाहिये। विश्वास एवं प्रतीक्षा करनी चाहिये। जैसे किसी मित्रको पत्र देते हैं, फिर वापस पत्रकी प्रतीक्षा करते हैं, उसी प्रकार प्रतीक्षा करनी चाहिये। परम भरोसा होनेसे भगवान्‌की दयासे कल्याण हो सकता है। परमात्माके भरोसे जी-तोड़ परिश्रम करना चाहिये। शरीरको आरामतलब नहीं बनाना चाहिये। जितनी शक्ति है उसे परमात्माकी प्राप्तिमें लगा देनी चाहिये। फिर परमात्माकी प्राप्तिमें कोई भी शंका नहीं है।

❑❑

21 सत्संगकी बातोंको आचरणमें लायें

हमलोग जितनी बात सुनते हैं उतनी काममें नहीं लाते। एक रुपयेमें चार आने भी काममें लायें तो हमारा काम हो सकता है। इस विषयमें हमें विशेष ध्यान देना चाहिये। हम जितने लोग चित्रकूट गये थे, उनमें बहुत-से यहाँ हैं, वहाँकी बातोंको याद करना चाहिये। वहाँ किस तरह समय बीतता था, यहाँ तो उससे बढ़कर समय बीतना चाहिये। वहाँ मौन रहकर गीताके किसी श्लोकपर विचार किया करते थे। साधन, भजन, ध्यान, जप, स्वाध्याय आदि करते थे, सत्संगमें भी आते थे। मौनमें भजन-ध्यान ठीक रहता है।

यहाँ हम आये हैं दो कामोंके लिये। जप-तप और सत्संगके लिये। जप एवं तपसे पापोंका नाश होता है और सत्संगसे आवरणका नाश होता है तथा ज्ञानकी उत्पत्ति एवं सुधार होकर शीघ्र ही उद्धार हो जाता है। यहाँ स्वाभाविक ही जितने लोग आये हैं उनको बहुत आनन्द मिलता है, क्योंकि वहाँ तो गद्दोंपर अच्छे-अच्छे कमरोंमें ऐश-आराम करते थे। यहाँ तो सात्त्विक गंगारेणुकाका आसन है, जो कि मरनेके समय एक मुट्ठी भी नहीं मिलती। पीनेके लिये गंगाजल, स्नानके लिये गंगाजल है ही, जिससे अन्दर और बाहरकी शुद्धि हो जाती है। गंगाकी ध्वनिसे कान पवित्र होते हैं, दर्शनसे नेत्र पवित्र होते हैं, यह पवित्र वटवृक्ष है, चारों ओर दृष्टि उठाकर देखें तो वन ही वन है। जिधर जायें उधर ही वैराग्य और शान्तिका साम्राज्य छा रहा है, स्वाभाविक ही वैराग्य होता है। गीताभवन तो राजसी तथा सात्त्विक दोनों मिश्रित है। महल मकान तो राजसी हैं और चित्र आदि सात्त्विक हैं। यहाँ तो केवल सात्त्विक है। विलासिता तो है ही नहीं। सब प्राकृत है। प्रकृतिसे उत्पन्न हुए हैं। विशेष बनावट नहीं

है, ऋषियोंका-सा आश्रम है। पूर्वमें तो ऐसे ही आश्रम थे। ऋषि ऐसे ही आश्रमोंमें रहते और भगवच्चर्चा किया करते थे। उनको ऐसा करनेसे शान्ति मिलती थी। संसारके विषय-भोगोंसे हजार गुना सुख वैराग्यमें है।

वैराग्य सच्चा होना चाहिये, वैराग्यमें बड़ा ही आनन्द आता है। यह सात्त्विक आनन्द है, विषय भोगोंवाला तो राजसी है, निम्न श्रेणीका है। ध्यानजनित सुख सात्त्विक है। इन्द्रिय-विषयोंके संयोगसे होनेवाला सुख राजसी तथा क्षणिक है। क्षणिक वैराग्यका जबतक नशा रहता है तबतक वह क्षणिक प्रतीत होता है। जैसे समुद्रमें लहरें उठती हैं, उसी प्रकार हृदयमें लहरें उठती हैं। विषय-भोगोंसे प्रीति हट जाती है उसका नाम वैराग्य है और चित्तकी वृत्तियाँ जब हट जाती हैं तो उसका नाम उपरति है। भगवान्‌ने कहा है—

अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा॥

(गीता १५। ३)

यह संसाररूपी वृक्ष है। इसकी जड़ दृढ़ है, ऐसे दृढ़ वृक्षको वैराग्यरूपी शस्त्रसे काट डालना चाहिये। संकल्परहित हो जानेका नाम उपरति है। संसारवृक्षको काटकर जहाँ जाकर वापस नहीं आते उस पदको खोजना चाहिये। जिसको प्राप्त करनेके बाद फिर वापस इस संसारमें नहीं आना पड़ता। उसको न सूर्य प्रकाशित करता है न चन्द्रमा न अग्नि ही। जिस स्थानको प्राप्त करनेके बाद, जिस मेरे परमधामको जानेके बाद वापस नहीं लौटते। यही परमधाम है, जो साक्षात् स्वरूप ही है। इसीको अव्यक्त, अक्षर कहते हैं। ऐसे सुखोंके सागर भगवान्‌को छोड़कर जो विषय-भोगोंमें मन लगाते हैं वे तो धूल चाटते हैं। असलीके सामने तो राजसी, तामसी मल मूत्रके समान हैं। ये तो त्यागनेके योग्य हैं।

सात्त्विक सहायक है, वह भी ज्ञान और सुखके अभिमानसे बाँधनेवाला है। जिस समय ध्यान-जपके समयमें सुख मिलता है, वह सात्त्विक है। उससे बहुत अधिक आनन्द आगे है। उस सात्त्विकको ही परमात्माकी प्राप्ति मान लेते हैं तो वहीं रुक जाते हैं। वह चौरासी लाख योनियोंमें भटकता नहीं, किन्तु परमात्माकी प्राप्तिमें विलम्ब होता है। जब मनुष्य साधन करता है उस समय सिद्धियाँ अपने आप आगे आती हैं। वे बाधक हैं। लोकदृष्टिमें तो सिद्धियाँ हैं, पर परमार्थिक दृष्टिमें बाधक हैं। जो कल्याण या आत्माकी उन्नति चाहता है उसे उनका तिरस्कार करना चाहिये। सिद्धियाँ विघ्न नहीं देतीं तो देवता अप्सराओंको भेजते हैं, वे विघ्न डालती हैं।

वैराग्यके लिये शुकदेवजीका स्वाँग भी अच्छा है, किन्तु असली हो तो कहना ही क्या है? शुकदेवजी कितने उच्चकोटिके विरक्त महात्मा थे, वे वैराग्य तथा उपरतिके नशेमें चूर रहते थे। जलाशयमें स्त्रियाँ स्नान कर रही हैं, शुकदेवजी वहाँसे चले गये। वेदव्यासजी गये, तब उन्होंने अपने अंग ढक लिये। वेदव्यासजीने पूछा तब कहा आपको स्त्री-पुरुषका ज्ञान है, उनको इसका ज्ञान ही नहीं है। बस, इतना ही अन्तर है। जब शुकदेवजी परीक्षित्‌की सभामें जा रहे हैं। मार्गमें लड़कोंने पागल समझकर उनपर धूल डाल दी, आगे गये, सभामें ऋषि-मुनि बैठे थे, वे सब खड़े हो गये। परीक्षित्‌पर प्रभाव पड़ा, पूछा कैसे खड़े हो गये? ऋषियोंने कहा इनकी अवस्था बड़ी नहीं है—पर इनमें गुण बड़े हैं। इनमें त्याग, वैराग्य सबसे बढ़कर है। शुकदेवजी बैठे, तब सब मुनि बैठे। ऊपरसे पुष्पोंकी वृष्टि हुई। जैसे पुष्पोंकी वृष्टि वैसे ही कूड़ा-करकटकी वृष्टि है, न द्वेष है न प्रीति, ऐसी अद्‌भुत अवस्थाके स्मरणमात्रसे वैराग्य होता है। वैराग्यकी इच्छा हो तो

शुकदेवजीका चिन्तन करना चाहिये। कितने उच्चकोटिके पुरुष थे। जिनको देखकर ऋषि-मुनि भी मुग्ध हो गये। ऐसे वैराग्यवान् पुरुष जिस रास्तेसे निकलते हैं, उस मार्गमें वैराग्य-उपरतिकी वर्षा करते हुए निकलते हैं। जो वैराग्यके नशेमें चूर रहता है उसे देखकर ही वैराग्य होता है।

राजा जनक वैराग्यमें निमग्न रहते थे। उनके पास शुकदेवजी शिक्षा लेने आये थे। बात महाभारत शान्तिपर्व तथा योगवासिष्ठमें है। एक समय शुकदेवजी वेदव्यासजीके पास आये, कहा उपदेश करो। उन्होंने उपदेश दिया। तब शुकदेवजीने कहा—इतना तो मैं जानता ही हूँ, किन्तु शान्ति नहीं मिली। इससे परेकी बात सुनायें। इसके परेकी बात जाननी हो तो राजा जनकके पास जाओ। उनके समान इस संसारमें कोई भी नहीं है। यह सुनकर वे उनके पास गये। द्वारपालके द्वारा सूचना दी कि शुकदेवजी आपके पास आये हैं। राजाने कहा खड़ा रहने दो। शुकदेवजी खड़े रह गये। राजाने सात दिन बाद पूछा उनकी कैसी स्थिति है। उत्तर मिला—वैसे ही खड़े हैं। तब कहा उनको ले आओ, पूछा कैसे आये? कहा आपसे उपदेश लेने आया हूँ। राजाने उपदेश दिया। शुकदेवजीने कहा—यह बात तो मैंने पिताजीसे भी सुनी है, मैं भी जानता हूँ, किन्तु शान्ति नहीं मिली। आगेकी बात बतायें। इसके लिये कोई बात नहीं, यही बात सबसे बढ़कर है, यही श्रेष्ठ है। आप तो मेरेसे बढ़कर हैं। आप भीतरसे भी त्यागी हैं और बाहरसे भी हैं। मैं तो केवल भीतरसे ही त्यागी हूँ। सारे काम करता हूँ। आप एकान्तमें जाकर ध्यान करेंगे तो आपकी उच्चकोटिकी स्थिति हो जायगी। उन्होंने एकान्तमें ध्यान लगाया और मस्त हो गये। शान्ति मिली हुई थी, भगवान्‌की प्राप्ति भी हो गयी।

अर्जुन! मेरे आश्रित हुआ चाहे कोई भी पापी क्यों न हो, स्त्री,

वैश्य या शूद्र भी क्यों न हो, वह परमगतिको प्राप्त हो जाता है।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

(गीता ९। ३२)

ब्राह्मणों तथा राजर्षियोंके लिये तो कहना ही क्या है? जातिसे नीच तथा आचरणोंसे जो नीच हो, उसका भी कल्याण हो सकता है। हमें इसी जन्ममें भगवान्‌की प्राप्ति कर लेनी चाहिये। जबतक श्वास है तबतक आप भजन, ध्यान कर सकते हैं, हमें कटिबद्ध होकर करना चाहिये। ऋषि-मुनि हमारे पूर्वज यह लिख गये कि तुम आशावादी रहो, निराशावादी नहीं। निराशा बड़ी खराब है, उससे पतन हो जाता है। जब भगवान् हैं तो हम निराश क्यों? निराशा तो डुबानेवाली है। भगवान् आश्वासन देते हैं कि तुम हर समय मेरा भजन करो, मैं उद्धार कर दूँगा। जब हम नहीं करते, यह हमारे श्रद्धा-विश्वासकी कमी है, स्तुति, प्रार्थना, पूजा, पाठ, भक्ति करनेकी बात तो अच्छी है, किन्तु भगवान्‌को याद करनेसे ही प्राप्ति हो जाती है।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

अनन्य चित्तसे जो निरन्तर मेरा स्मरण करता है, उस पुरुषके लिये मैं सुलभ हूँ।

हमको तो भगवान्‌के दर्शन दुर्लभ-से हो रहे हैं, क्योंकि हम दुर्लभ मान बैठे हैं। माननेके साथ भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है। भगवान् बड़ी दया करके चौरासी लाख योनियोंमेंसे मनुष्य-शरीर प्रदान करते हैं, इसको पाकर जो भगवान्‌को प्राप्त किये बिना ही जाता है उसे सब धिक्कारते हैं, वह निन्दाका पात्र है।

उत्तम देश, उत्तम काल, आर्यावर्त, भागीरथीका किनारा, कितनी दया है। घोर कलिकाल जो अवगुणोंकी खान है, उससे निकलकर भगवान्‌की स्मृति, नामजप, भजन और ध्यानमें लग जाना चाहिये। ऐसा अवसर प्राप्त हो गया, फिर भी हम भजन, ध्यान नहीं करते। कलियुगके समान कोई युग नहीं है, यदि विश्वास करें तो रामके गुणोंके गानसे शीघ्र ही प्राप्ति हो सकती है।

धार्मिक पुस्तकें पहले तो बहुत महँगी थीं, हस्तलिखित मिलती थीं, पुस्तकोंका मिलना भी कठिन था। हिरण्यकश्यपुके समयमें तो नाम जपनेवालोंको वह मरवा देता था, उसने अपने पुत्रका भी लिहाज नहीं रखा। जबतक ऐसा कानून न आये तबतक हमें अपना काम बना लेना चाहिये।

हमें कोई महात्मा मिल जाय तो हम पहचानते नहीं, उनको स्वयं बतानेकी आवश्यकता नहीं है—

बड़ो बड़ाई ना करे बड़ा न बोले बोल।
हीरा कबहूँ ना कहे लाख हमारो मोल॥

आपको चाहिये कि गीता, रामायण तथा जो बातें सत्संगमें सुनते हैं, उनका पालन करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। जो बातें गीता, रामायण आदि शास्त्रोंमें लिखी हैं उन्हें मैं तो टूटी-फूटी भाषामें कह देता हूँ। वास्तवमें जो बात कही जाती है, सब शास्त्रोंकी कही जाती है, मेरे घरकी बात तो है नहीं। यदि आप उन बातोंके अनुसार चलेंगे तो आपका सुधार होगा, यदि मैं चलूँगा तो मुझे लाभ होगा। आप यदि मेरी ओर देखेंगे, मैं आपकी ओर देखूँगा तो क्या लाभ होगा। वही पाँच भूतोंका शरीर आपका है, वही मेरा है, वही आत्मा आपकी है, वही आत्मा मेरी है।

❑❑

22 अनन्यभक्ति कैसे प्राप्त हो?

अनन्यभक्ति तथा भगवान्‌की प्राप्ति वास्तवमें भगवान्‌की कृपासे ही होती है। भगवान्‌की अनन्यभक्ति तथा प्राप्तिके लिये रोते हुए एकान्तमें कातरभावसे, करुणाभावसे, व्याकुलताके साथ स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये। भगवान्‌की दयासे अनन्यभक्ति तथा उनकी प्राप्ति हो सकती है। भगवान्‌की दया सबपर है, किन्तु हम विश्वास नहीं करते। विश्वास न करनेके कारण ही हम समझते नहीं हैं। इसके लिये गद्‌गद वाणीसे भगवान्‌की प्रार्थना करनी चाहिये। इस प्रकार हम पात्र बनकर भगवान्‌की प्राप्ति कर सकते हैं। जिस प्रकार गंगाकी सबपर दया है, कोई भी कितना ही लाभ क्यों न उठाये। ठीक गंगाकी तरह ही सबपर भगवान्‌की दया है, किन्तु श्रद्धा तथा प्रेमकी कमीके कारण लाभ नहीं उठा सकते। जो श्रद्धासे गंगामें स्नान करता है, वही गंगासे लाभ उठा सकता है। हम भी यदि श्रद्धा रखें तो भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है। हम न तो किसीका चिन्तन करें, न और कुछ ही करें तो कैसे अनन्यभक्ति तथा भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है। वे ही हमारे सब कुछ हैं, ऐसा मानना चाहिये। जैसे पत्नी पतिको ही सब कुछ समझकर उन्हींकी ही सेवा किया करती है, यही उत्तम सेवा है। परमात्मा ही स्वामी बनानेके योग्य हैं, ऐसा समझकर आज्ञाका पालन, ध्यान, नामजप और उन्हींपर निर्भर होकर रहना चाहिये। उन्हींका ही आसरा लेना चाहिये। ऐसा समझना चाहिये —

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

हे भगवान्! आप ही मेरे सब कुछ हैं। आप ही माता हैं, आप

ही पिता हैं, आप ही बन्धु हैं तथा आप ही सखा हैं, आप ही मेरे सब कुछ हैं। यहाँतक कि मेरे जीवन और प्राण भी आप ही हैं। इस प्रकार भगवान्‌के आश्रित होकर भजन-ध्यान तथा उनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये। यही अनन्यभक्ति है, यही शरणागति है। जिसको हम हमारा मानते हैं, उन सबको भगवान्‌के समर्पण कर देना चाहिये। सब कुछ भगवान्‌का माननेसे दया प्रत्यक्ष प्रतीत होती है।

उदाहरणके लिये—भगवान्‌के बहुत-से भक्त हुए, किन्तु भक्त शिरोमणि प्रह्लादका अनुकरण करना चाहिये। उस निष्कामी भक्तकी भक्ति भगवान्‌के लिये ही थी। वे भारी आपत्ति आनेपर भी भक्तिसे नहीं डिगे। उन्हें लोभ दिया गया। राजपद देनेको भी कहा गया, किन्तु प्रह्लादके हृदयमें यह बात प्रवेश तक नहीं हुई। उसने भगवान्‌को छोड़ना नहीं चाहा। हिरण्यकश्यपुने अपना भय भी दिखलाया कि यदि तू मेरी बात नहीं मानेगा तो तुझे मार डालूँगा। भय दिखाया ही नहीं, अपितु अत्याचार भी किये, किन्तु उसका बाल भी बाँका नहीं हुआ।

जाको राखे साइयाँ मार सके नहिं कोय।
बाल न बाँका कर सके जो जग बैरी होय॥

जिसकी सँभाल भगवान् रखते हैं, उनको कोई भी नहीं मार सकता। जगका बैरी भी उसका बाल भी बाँका नहीं कर सकता।

वे निर्भर होकर भगवान्‌की भक्तिमें स्थित थे। इस प्रकार विश्वास करके उन्हें भूलना नहीं चाहिये, अपनी बागडोर उन्हें ही सौंप देनी चाहिये। भगवान्‌की जो चीज है, उस चीजको उन्हें ही समर्पण कर देना—यही भक्ति, यही प्रेम तथा अनन्य शरण है। अनन्यभक्ति कैसे हो उसका तो संक्षेपसे उत्तर दे दिया गया। अब निम्नलिखित श्लोकोंकी व्याख्या की जाती है—

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः॥
शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्॥

(गीता ६। २४-२५)

उपर्युक्त श्लोकोंमें जो साधन बताया गया है वह निराकारके ध्यानका साधन है।

संकल्पोंसे उत्पन्न होनेवाली सम्पूर्ण कामनाओंको निःशेषतासे त्यागकर मनके द्वारा इन्द्रियग्रामको चारों ओरसे रोककर धीरे-धीरे धैर्यद्वारा धारण की गयी बुद्धिके द्वारा मनको वशमें करके कुछ भी चिन्तन न करे।

इसको भगवान्‌का भक्त भेद और अभेद दोनों प्रकारसे कर सकता है। साधककी इच्छापर निर्भर है। यहाँ प्रकरण निर्गुण-निराकारका है। अभेदमें ही हमने घटाया है। भेदमें घटायें तो कोई मनाही नहीं है। अभेदमें इसलिये घटाया है कि यहाँ ब्रह्मभूत शब्दसे अहं ब्रह्मास्मिवाला भाव आ सकता है। आगे इसका फल भी बताया है—

सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥

(गीता ६। २८)

इससे भी निर्गुण निराकार ही कायम रहता है।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥

(गीता ६। २९)

सर्वव्यापी अनन्त चेतनमें एकीभावसे स्थितिरूप योगसे युक्त आत्मावाला तथा सबमें समभावसे देखनेवाला योगी आत्माको

सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित और सम्पूर्ण भूतोंको आत्मामें कल्पित देखता है।

यह श्लोक भी अभेदपरक ही है। यहाँ चौबीसवें श्लोकसे उन्तीसवेंतक एक ही निराकारका साधन प्रतीत होता है। कोई इन दोनोंको भेदमें भी मान ले तो भी कोई बात नहीं। गीतामें भेद और अभेद दोनोंका वर्णन किया है। फिर भेदकी दृष्टिसे कहे गयेको अभेदमें और अभेद दृष्टिसे कहे गयेको भेदमें क्यों लेवें। भगवान्‌ने कहा है—

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥

(गीता ३।३)

हे निष्पाप! इस लोकमें दो प्रकारकी निष्ठा मेरे द्वारा पहले कही गयी है। उनमेंसे सांख्ययोगियोंकी निष्ठा तो ज्ञानयोगसे और योगियोंकी निष्ठा कर्मयोगसे होती है।

ज्ञानयोगवाली निष्ठामें विचार और समझ प्रधान है। कर्मयोगवाली निष्ठामें कहीं भक्ति एवं कहीं शरण है। जहाँ भक्तिके लिये कुछ भी कहा है वहाँ कर्मप्रधान भक्तियोग ही समझना चाहिये। अब इन श्लोकोंके बतानेके पूर्वमें साधकको किस प्रकार साधन करना चाहिये यह बात बतायी जाती है।

ध्यानके लिये एकान्तमें जाकर आसन लगाना चाहिये। आसनकी बात इस प्रकार बतायी है—

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये॥

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥

(गीता ६। ११—१३)

शुद्ध पवित्र देशमें आत्माको प्रिय लगनेवाले किसी भी आसनसे जो न अति नीचा हो तथा न अति ऊँचा हो, ऐसे वस्त्र, कुशा तथा मृगछालावाले आसनपर बैठकर जीते हुए चित्त तथा इन्द्रियोंकी क्रियाओंद्वारा मन एकाग्र करके आत्माकी शुद्धिके लिये योगका अभ्यास करे। काया, सिर और ग्रीवाको समान धारण करके नासिकाके अग्रभागको देखता हुआ अन्य दिशाओंको न देखे।

इन श्लोकोंमें तीसरा श्लोक विशेष महत्त्वका है। महर्षि पतंजलिने पातञ्जलयोगदर्शनमें कहा है—'**स्थिरसुखमासनम्**' जो स्थिर हो तथा जिस आसनसे सुखसे बैठा जाय वही आसन है। इस प्रकार पद्मासन, स्वस्तिकासन आदि जो कोई भी आसन अपनी आत्माको प्रिय लगे उसी आसनसे बैठकर ध्यान लगाना चाहिये। यह इसलिये है कि आलस्य या निद्रा न आवे। आसन ध्यानमें बड़ा ही सहायक है। निद्रा तो विशेषकर बाधक है ही। अपनी सुविधानुसार आसनपर बैठ जाना चाहिये। फिर गीताजीके छठे अध्यायके चौबीस तथा पचीसवें श्लोकके अनुसार ध्यान करना चाहिये।

संकल्पसे उत्पन्न होनेवाली सम्पूर्ण कामनाओंको अशेषतासे त्यागकर मनसे इन्द्रियोंको रोककर कामनाका त्याग करना चाहिये। कामनाके भेद २। ५५ की व्याख्यामें है। तृष्णा, कामना, इच्छा, स्पृहा, वासना ये कामनाके भेद हैं। स्त्री, पुत्र, धन, मान, बड़ाई आदि जो प्राप्त हैं, उनके बढ़नेकी इच्छा एवं उसको बढ़ानेका नाम ही तृष्णा है। अवस्थाके साथ तृष्णा बढ़ती ही

जाती है। स्वाभाविक ही बढ़ती है। इस प्रकारकी जो कामना है उसके भी तीन भेद हैं। पुत्रैषणा, लोकेषणा और वित्तेषणा। तृष्णाके बाद कामनाका दायरा है। यों तो सभीका नाम कामना है। जिसका अभाव हो उसकी इच्छा करनेका नाम कामना है। उसकी अपेक्षा यह ठीक है। किसीके पास पुत्र न हो तो वह महात्मासे पुत्र माँगे, यह तृष्णासे तो ठीक है।

राजा दिलीपको पुत्रकी कामना थी। उसे हम तृष्णा नहीं कह सकते। जिस चीजका अभाव हो उसकी इच्छा करनेका नाम कामना है।

जैसे कोई भोजन करता है। उसकी थालीमें सब कुछ है। उसे कहें कि क्या लड्डू डाल दें तो वह कहता है कि नहीं, अभी तो बहुत ज्यादा पड़े हैं। यदि नहीं है तो भी नहीं कह दे, तो आवश्यकता नहीं यह शब्द काममें लिया जा सकता है। यदि कुछ माँगे तो वह इच्छा है, इसकी जगह दूसरा शब्द काममें नहीं लिया जा सकता। इच्छा शब्द हल्का है। हल्का होते हुए भी अच्छे पुरुषोंको नहीं पूछा जाता। इसके बाद आवश्यकता इससे भी हल्की है। जैसे कोई व्यक्ति बीमार है। आरोग्य होना चाहता है। उस समय दवाई-पानीकी विशेष आवश्यकता होती है। उसे पूछा जाय कि वैद्य, डाक्टरको लाऊँ, तब वह कहता है आवश्यकता नहीं है, आवश्यकता होती तो कह देता। साधुओंको कपड़ा देना चाहते हैं, कहते हैं कपड़ा ले लें तो वह कहते हैं कि अभी तो आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता होगी तो वह अवश्य ले लेगा। यहाँ इच्छा, तृष्णा या कामना किसी भी शब्दकी आवश्यकता नहीं। वासना इससे भी हल्की है। किसी चीजकी आवश्यकता नहीं, वृद्धि-कमीकी भी आवश्यकता नहीं। फिर भी मेरा जीवन

बना रहे, जो कुछ है वह बना रहे, चला न जाय, अभाववाली चीजकी आवश्यकता नहीं है, जो है वह बना रहे, ऐसा जो भाव है, इसका नाम वासना है। इससे भी सूक्ष्म वासना यहाँ होती है कि केवल मैं बना रहूँ। मैं अभी नहीं मरूँ। अपना भाव ही सूक्ष्म वासना है। यह वासना देरीतक रहती है। इसका भी त्याग होना चाहिये। जिस प्रकार बर्तनमें घी रखते हैं, उसे निकालनेपर भी चिकनाई रह जाती है। उस चिकनाईको भी हटा दे तो वह निःशेषतासे त्याग कहा जा सकता है। अंशमात्रका भी न रहनेका नाम अशेषतासे त्याग है। जितनी भी कामनाएँ हैं, उनसे रहित होना, उनका त्याग कर देना यह पहली बात है।

इसके बाद इन्द्रिय समुदायको अच्छी प्रकार वशमें करना चाहिये। ज्ञानेन्द्रियको अच्छी प्रकारसे विषय-भोगोंसे हटाकर परमात्माको जाननेमें लगा देना चाहिये। मनके द्वारा इन्द्रियोंको विषयोंसे हटा देना चाहिये। मनके निरोधसे प्राणायाम अपने-आप ही हो जाता है। यहाँ तो '**मनसा**' शब्द दिया है। प्राणके द्वारा कामना त्यागनेके लिये नहीं कहा। नियम्यका अर्थ है रोकना। जिस प्रकार घोड़ा घासकी ओर जाता है, उसी प्रकार मन भी घोड़ा है, वह विषयोंकी ओर स्वतः ही जाता है। इस मनरूपी लगामसे इन्द्रियरूपी घोड़ोंको घासरूपी विषयभोगोंसे रोक देना चाहिये।

धीरे-धीरे उपराम होवे। यानी अब बाहरकी इन्द्रियाँ विषयोंसे हटकर क्रियारहित हो गयीं। अब मन रहा। मनके लिये प्रथम उपराम होना चाहिये। इन्द्रियाँ जिस प्रकारसे विषयोंसे रोक दी गयीं, उसी प्रकार संकल्प-विकल्पसे मनको हटा देना चाहिये। धीरे-धीरे मनुष्यको उपराम होना चाहिये। मन एक साथ नहीं रुक सकता। इसलिये शनैः-शनैः कहा है। यहाँ विचार प्रधान प्रकरण है। अतः

विवेकसे उपरामताको प्राप्त होवे। शनैः-शनैः मनको समझावे। संसारका चिन्तन तो हानिकर है। संसारसे अपना कोई प्रयोजन है ही नहीं। इस प्रकार मनको बुद्धिके द्वारा समझाकर स्फुरणारहित यानी संकल्परहित होकर सात्त्विक धृतिसे संयुक्त बुद्धि, जिसे गीताके अठारहवें अध्यायमें सात्त्विक धृतिके नामसे कहा है, मनको अच्छी प्रकार वशमें करे। क्रिया तो स्थिर हो गयी, मनकी वृत्तियोंको स्फुरणारहित होकर स्थिर रखना चाहिये। धैर्ययुक्त बुद्धिके द्वारा मन, प्राण तथा इन्द्रियोंकी क्रियाओंको रोकना चाहिये। धृतिसंयुक्त सात्त्विक बुद्धिसे मनको आत्मामें स्थित करे। आत्मा-परमात्मा एक है। आत्माका प्रकरण है इसलिये आत्मा कहा है। विज्ञानानन्द ब्रह्मके स्वरूपके सिवाय कुछ है ही नहीं। उस ब्रह्मके स्वरूपमें मनको लगा दे। यह बुद्धिका काम है। धृतिके द्वारा मनको परमात्मामें स्थित करे। संसारकी स्फुरणासे मनको हटाकर परमात्माके स्वरूपमें बुद्धि लगाये। धैर्ययुक्त बुद्धिसे मनको परमात्माके स्वरूपमें लगाये। सच्चिदानन्दघनके स्वरूपमें लगा दे। साथ ही उस ब्रह्मके अतिरिक्त किसीका भी चिन्तन न करे। जब ब्रह्मके सिवाय कोई चीज है ही नहीं तो किसीका झूठा चिन्तन करें ही क्यों। किंचिन्मात्र किसीका भी चिन्तन न करें। यदि जबरदस्ती चिन्तन हो जाय तो जिस-जिसका यह मन चिन्तन करे, उस-उससे हटाकर बार-बार इसे परमात्माके ध्यानमें लगा दे। जैसे पहले लगाया था। सात्त्विक धृतियुक्त बुद्धिके द्वारा ही मनको लगाया जा सकता हैं। इस मनको समझाकर लगाना चाहिये।

अभ्यास करते-करते मनका निक्षेप हो जाता है। निःशेषतासे मनको रोकनेका नाम ही विनियम्य है। उस मनको बार-बार रोककर आत्मामें ही लगा दे।

❑❑

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—बहुत-से साधु ऐसे हैं जो ज्ञानी हैं, धुरन्धर विद्वान् हैं, उनकी मुक्ति क्यों नहीं होती?

उत्तर— यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥

(गीता ५। २८)

इन्द्रिय, मन एवं बुद्धिको जिसने जीत लिया है। ऐसा मुनि मोक्षके परायण हुआ इच्छा, भय एवं क्रोधसे रहित सदा ही मुक्त है, ऐसा समझना चाहिये।

जो महात्मा होकर अपनेको महात्मा कहता है, वह किसी अंशमें महात्माकी श्रेणीमें नहीं कहा जा सकता है। संसारमें जितने भी भक्त होते हैं सब अपनी नीचता ही दिखाते हैं। भगवान् भी अपनी प्रशंसा नहीं करते, अपनेसे बढ़कर अपने भक्तोंकी प्रशंसा करते हैं—

मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा॥

अतः भगवान् सबसे ऊँचे हैं। वास्तवमें सच्चिदानन्दको ही सर्वोच्च जानना चाहिये। श्रीराम और श्रीकृष्णसे बढ़कर न कोई हुआ है और न होगा ही।

प्रश्न—हम काम, क्रोध, लोभ नहीं जीत सकते तो क्या हमें भगवान् मिल सकते हैं?

उत्तर—भक्ति क्यों नहीं मिल सकती? भगवान्‌की भक्ति अवश्य मिल सकती है। भक्तिसे काम, क्रोध स्वतः ही मिट सकते हैं। महादुराचारीको भी भक्ति मिल सकती है तथा भक्तिके

प्रवचन—दिनांक २४-४-१९५२।

प्रभावसे वह तुरन्त ही परमात्माको प्राप्त कर सकता है। गीतामें भगवान् कहते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(गीता ९। ३०-३१)

अतिशय दुराचारी भी यदि मुझे भजता है तो वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है तथा इतना ही नहीं वह शाश्वत शान्तिको प्राप्त हो जायगा। दुर्गुण-दुराचार सब भक्तिके प्रभावसे नष्ट हो जाते हैं। पासमें भी नहीं फटक सकते। गीता-रामायणमें यह बात बतायी गयी है। जब अतिशय दुराचारी भी धर्मात्मा हो सकता है तो काम, क्रोधके वशीभूत हुआ धर्मात्मा हो जाय, उसका कहना ही क्या है। वास्तवमें तो जो भगवान्‌को याद करेगा, वह दुराचारी नहीं होगा तथा जो दुराचारी होगा वह नाम भी नहीं जपेगा।

प्रश्न—भगवान् जब अवतार धारण करते हैं तो भक्तके रूपमें अवतार लेते हैं या किसी और रूपमें?

उत्तर—सब रूपोंमें भगवान् अवतार ले सकते हैं। गौ, गधा, हाथी सभीके रूपमें भगवान् अवतार धारण कर सकते हैं। लाठीको भी अवतार मान सकते हैं। वृक्षको भी भगवान् मान सकते हैं। जिस प्रकार मन्दिरमें पत्थरकी मूर्ति होती है, हम उसे भगवान् मानते हैं, उसी प्रकार हम सबको ही भगवान् मानते तो कितनी अच्छी बात हो। स्त्रीके लिये पति, बालकके लिये पिता, शिष्यके लिये गुरु भगवान्‌के समान ही है। यदि उनको भगवान् मानकर उनकी सेवा करें तो उसे अवश्य ही इसका फल मिलेगा।

कोई पन्थ सम्प्रदायवाले किसीको ईश्वर मानें तो ठीक ही है, किन्तु दूसरे सम्प्रदायवालेको मनावें तो वह नहीं मान सकता। यह बात प्रत्यक्ष देखी हुई है।

प्रश्न—गृहस्थीको तीर्थयात्रासे भगवान् शीघ्र मिलते हैं या घरमें बैठे राम-नाम जपनेसे ही मिल जाते हैं?

उत्तर—जिसका जो विश्वास है उसे उसी प्रकार ही मिलते हैं। जो यह समझता है कि घरमें बैठे भगवान्‌की प्राप्ति होगी तो उसे घर बैठे ही भगवान्‌की प्राप्ति होगी, इसमें कोई भी शंका नहीं है। यदि तीर्थका विश्वास है तो तीर्थोंमें ही मिलेंगे, घरपर नहीं। श्रद्धाकी बात है। भगवान्‌की प्राप्ति तो श्रद्धाके अनुसार ही होती है। '**यो यच्छ्रद्धः स एव सः**' श्रद्धा ही प्रधान है। यदि आपकी यही श्रद्धा है कि घरमें ही मिलेंगे तो घरमें ही मिलेंगे। यदि कोई कहे कि तीर्थोंमें ही मिलेंगे तो उसे तीर्थोंमें ही मिलेंगे।

प्रश्न—आपने कहा श्रद्धाके अनुसार फल होता है। हमने आपके ग्रन्थ भी पढ़े। हम निष्कामभावसे यहाँ आये। हमारा कोई अतिथि सत्कार नहीं हुआ। क्या केवल माथा पटकनेसे ही प्राप्ति हो सकती है।

उत्तर—हाँ, हो सकती है। शास्त्रोंमें लिखा है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(गीता ९। २६)

जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुणरूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ।

दूसरी बात आपने यह कही कि हम निष्कामभावसे आये हैं सो ठीक है। मैंने कब कहा कि आप सकामभावसे आये हैं। मैंने कब कहा कि मैं भक्त हूँ। मेरेमें यह कहनेकी सामर्थ्य नहीं है। दूसरे जो कहते हैं उनको हम तो भक्त नहीं कह सकते। भगवान्‌की भक्ति कई प्रकारसे होती है। गाजा-बाजाके बिना भी भक्ति हो सकती है। ध्रुव, प्रह्लादने कहाँ ढोल बजाया था, कहाँ हारमोनियम बजाया था? केवटने भगवान्‌के पैर धोए। क्या हम उसे भक्त न मानें। हनुमान्‌जीको क्या भक्त नहीं मानें, जिन्होंने ढोलकी नहीं बजायी। हम किसीको निषेध नहीं करते। आप गाजा-बाजा माँगते थे तो क्या अतिथिसेवा गाजे-बाजेसे ही करें, यह बात नहीं है। यथाशक्ति अतिथि सेवा करनी चाहिये। अपने पास यदि ढोल नहीं हो तो हम कहाँसे देवें। अतिथिके लिये सब आदमी गाजा-बाजा कैसे रख सकते हैं। अतः इस विषयमें आपके आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

प्रश्न—कलियुगमें भगवान्‌की प्राप्तिका सबसे सुगम साधन क्या है?

उत्तर—वास्तवमें भजन और सत्संग ही भगवत्प्राप्तिका साधन है। कीर्तन, भजन, कथाएँ ही कलियुगमें मुक्तिके साधन हैं। ध्यान तो बहुत ही अच्छा है। भगवान् कहते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

जो पुरुष अनन्यभावसे मेरेको भजते हैं, उसके लिये तो हे पार्थ! मैं सुलभ ही हूँ।

□□